बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय

जन्म : 27 जून 1833 (उत्तर 24 परगना, प. बंगाल)

भाषा : बांग्ला

विधाएँ : उपन्यास, वैचारिक लेख, कविता, व्यंग्य

प्रमुख कृतियाँ: **उपन्यास** : आनंदमठ, दुर्गेशनंदिनी, कपालकुंडला, मृणालिनी, कृष्णकांत का वसीयतनामा, देवी चौधरानी

निबंध संग्रह : लोक रहस्य, विज्ञान रहस्य, विचित्र प्रबंध, साम्य

कविता संग्रह : ललिता ओ मानस

निधन : 8 अप्रैल 1894

आनंदमठ

संन्यासी आंदोलन और बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गई बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय की कालजयी कृति 'आनंदमठ' सन 1882 ई. मे छप कर आई। इस उपन्यास की क्रांतिकारी विचारधारा ने सामाजिक व राजनीतिक चेतना को जागृत करने का काम किया। इसी उपन्यास के एक गीत 'वंदेमातरम' को बाद मे राष्ट्रगीत का दर्जा प्राप्त हुआ।

'आनंदमठ' मे जिस काल खंड का वर्णन किया गया है वह हन्टर की ऐतिहासिक कृति 'एन्नल ऑफ रूरल बंगाल', ग्लेग की 'मेम्वाइर ऑफ द लाइफ ऑफ वारेन हेस्टिंग्स' और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज मे शामिल तथ्यो मे काफी समानता है।

बहुत विस्तृत जंगल है। इस जंगल मे अधिकांश वृक्ष शाल के हैं, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के है। फुनगी-फुनगी, पत्ती-पत्ती से मिले हुए वृक्षो की अनंत श्रेणी दूर तक चली गई है। घने झुरमुट के कारण आलोक प्रवेश का हरेक रास्ता बंद है। इस तरह पल्लवो का आनंद समुद्र कोस-दर-कोस-- सैकड़ों-हजारो कोस मे फैला हुआ है, वायु की झकझोर झोके से बह रही है। नीचे घना अंधेरा, माध्याह्न के समय भी प्रकाश नही आता-- भयानक दृश्य! उत्सव जंगल के भीतर मनुष्य प्रवेश तक नही कर सकते, केवल पत्ते की मर्मर ध्वनि और पशु-पक्षियो की आवाज के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नही सुनाई पड़ता।

एक तो यह अति विस्तृत, अगम्य, अंधकारमय जंगल, उस पर रात्रि का समय! पतंग उस जंगल मे रहते है लेकिन कोई चूं तक नही बोलता है। शब्दमयी पृथ्वी की निस्तब्धता का अनुमान किया नही जा सकता है; लेकिन उस अनंत शून्य जंगल के सूची-भेद्य अंधकार का अनुभव किया जा सकता है। सहसा इस रात के समय की भयानक निस्तब्धता को भेदकर ध्वनि आई-- " मेरा मनोरथ क्या सिद्ध न होगा ।.........."

इस तरह तीन बार वह निस्तब्ध-अंधकार अलोड़ित हुआ- 'तुम्हारा क्या प्रण है?'

उत्तर मिला- "मेरा प्रण ही जीवन-सर्वस्व है?"

प्रति शब्द हुआ- "जीवन तो तुच्छ है, सब इसका त्याग कर सकते है!"

"तब और क्या है....और क्या होना चाहिए?"

उत्तर मिला- "भक्ति!"

"बंगाब्द सन् 1176 के गरमी के महीने मे एक दिन, पदचिन्ह नामक एक गांव मे बड़ी भयानक गरमी थी। गांव घरो से भरा हुआ था, लेकिन मनुष्य दिखाई नही देते थे। बाजार मे कतार-पर-कतार दुकाने विस्तृत बाजार मे लंबी-चौड़ी सड़के, गलियो मे सैकड़ो मिट्टी के पवित्र गृह, बीच-बीच मे ऊंची-नीची अट्टालिकाएं थी। आज सब नीरव हैं; दुकानदार कहां भागे हुए है, कोई पता नही। बाजार का दिन है, लेकिन बाजार लगा नही है, शून्य है। भिक्षा का दिन है, लेकिन भिक्षुक बाहर दिखाई नही पड़ते। जुलाहे अपने करघे बंद कर घर मे पड़े रो रहे है। व्यवसायी अपना रोजगार भूलकर बच्चो को गोद मे लेकर विह्वल है। दाताओ ने दान बंद कर दिया है, अध्यापको ने पाठशाला बंद कर दी है, शायद बच्चे भी साहसपूर्वक रोते नही है। राजपथ पर भीड़ नही दिखाई

देती, सरोवर पर स्नानार्थियो की भीड़ नही है, गृह-द्वार पर मनुष्य दिखाई नही पड़ते हैं, वृक्षो पर पक्षी दिखाई नही पड़ते, चरनेवाली गौओ के दर्शन मिलते नही हैं, केवल श्मशान में स्यार और कुत्ते है, एक बहुत बड़ी आट्टालिका है, उसकी ऊंची चहारदीवारी और गगन-चुंबी गुंबद दूर से दिखाई पड़ते हैं। वह अट्टालिका उस गृह-जंगल मे शैल-शिखर-सी दिखाई पड़ती है। उसकी शोभा का क्या कहना है- लेकिन उसके दरवाजे बंद है, गृह मनुष्य-समागम से शून्य है, वायु-प्रवेश मे भी असुविधा है। उस घर के अंदर दिन-दोपहर के समय अंधेरा है; अंधकार मे रात के समय एक कमरे मे, फूले हुए दो पुष्पो की तरह एक दंपति बैठे हुए चिंतामग्न है। उनके सामने अकाल का भीषण रूप है।

1174 मे फसल अच्छी नही हुई, अत: ग्यारह सौ पचहत्तर मे अकाल आ पड़ा- भारतवासियो पर संकट आया। लेकिन इस पर भी शासको ने पैसा-पैसा, कौड़ी-कौड़ी वसूल कर ली। दरिद्र जनता ने कौड़ी-कौड़ी करके मालगुजारी अदा कर दिन मे एक ही बार भोजन किया। ग्यारह सौ पचहत्तर बंगाब्द की बरसात मे अच्छी वर्षा हुई। लोगो ने समझा कि शायद देवता प्रसन्न हुए। आनंद में फिर मठ-मंदिरो मे गाना-बजाना शुरू हुआ, किसान की स्त्री ने अपने पति से चांदी के पाजेब के लिए फिर तकाजा शुरू किया। लेकिन अकस्मात आश्विन मास मे फिर देवता विमुख हो गए। क्वार-कार्तिक मे एक बूंद भी बरसात न हुई। खेतो मे धान के पौधे सूखकर खंखड़ हो गए। जिसके दो-एक बीघे मे धान हुआ भी तो राजा ने अपनी सेना के लिए उसे खरीद लिया, जनता भोजन पा न सकी। पहले एक संध्या को उपवास हुआ, फिर एक समय भी आधा पेट भोजन उन मिलने लगा, इसका बाद दो-दो संध्या उपवास होने लगा। चैत मे जो कुछ फसल हुई वह किसी के एक ग्रास भर को भी न हुई। लेकिन मालगुजारी के अफसर मुहम्मद रजा खां ने मन मे सोचा कि यही समय है, मेरे तपने का। एकदम उसने दश प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। बंगाल मे घर-घर कोहराम मच गया।

पहले लोगो ने भीख मांगना शुरू किया, इसके बाद कौन भिक्षा देता है? उपवास शुरू हो गया। फिर जनता रोगाक्रांत होने लगी। गो, बैल, हल बेचे गए, बीज के लिए संचित अन्न खा गए, घर-बार बेचा, खेती-बारी बेची। इसके बाद लोगो ने लड़कियां बेचना शुरू किया, फिर लड़के बेचे जाने लगे, इसको बाद गृहलक्ष्मियो का विक्रय प्रारंभ हुआ। लेकिन इसके बाद, लड़की, लड़के औरते कौन खरीदता? बेचना सब चाहते थे लेकिन खरीददार कोई नही। खाद्य के अभाव मे लोग पेड़ो के पत्ते खाने लगे, घास खाना शुरू किया, नरम टहनियां खाने लगे। छोटी जाति की जनता और जंगली लोग कुत्ते, बिल्ली, चूहे खाने लगे। बहुतेरे लोग भागे, वे लोग विदेश मे जाकर अनाहार से मरे। जो नही भागे, वे अखाद्य खाकर, उपवास और रोग से जर्जर हो मरने लगे।

रोग को भी अवसर मिला- ज्वर, हैजा, क्षय, चेचकफैल पड़ा। विशेषत: चेचक का बड़ा प्रसार हुआ। घर-घर लोग महामारी से मरने लगे। कौन किसे जल देता है- कौन किसे छूता? कोई किसी की चिकित्सा नही करता, कोई किसी को नही देखता था। मर जाने पर शव कोई उठाकर फेकता नही था। अति रमणीय गृह-स्थान आप ही सड़कर बदबू करने लगे। जिस घर में एक बार चेचक हुआ, रोगी को छोड़कर घरवाले भाग गए।

महेंद्र सिंह पदचिन्ह के बड़े धनी व्यक्ति है -- लेकिन आज धनी-गरीब सब बराबर हैं। इस दु:खपूर्ण अकाल के समय रोगी होकर उसके आत्मीय-स्वजन, दासी-दास सभी चले गए है। कोई मर गया, कोई भाग गया। उस वृहत परिवार मे उनकी स्त्री, वे और गोद मे एक शिशु-कन्या मात्र रह गई हैं। इन्ही लोगो की बात कह रहा हूं।

उनकी भार्या कल्याणी ने चिंता छोड़कर गोशाला मे जाकर गाय दुही। इसके बाद दूध गर्म कर कन्या को पिलाया और गऊ को घास खाने के लिए डाल दिया। वह लौटकर जब काई तो महेद्र ने कहा-''इस तरह कितने

दिन चलेगा?''

कल्याणी बोली-- ''ज्यादा दिन नही ! जितने दिन चले, जितने दिन मै चला पाती हूं, चला रही हूं। इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना।''

महेद्र- ''अगर शहर ही चलना है तो तुम्हें ही इतनी तकलीफ क्यो दी जाय? चलो न, अभी चले !''

इसके बाद दोनो अनेक तर्क-वितर्क हुए।

कल्याणी- ''शहर मे जाने से क्या विशेष उपकार होगा?''

महेद्र- ''वह स्थान भी शायद ऐसे ही जन शून्य, प्राणरक्षा के उपाय से रहित है''

कल्याणी-''मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ता जाने से प्राणरक्षा हो सकेगी। इस स्थान से तो त्याग देना हर तरह से उचित है?''

महेंद्र ने कहा-''यह घर बहुत दिनो से वंशानुक्रम से संचित धन से परिपूर्ण है, इन्हे तो चोर लूट ले जाएंगे।''

कल्याणी-''यदि वह लोग लूटने के लिए आएं तो क्या हम दो जन रक्षा कर सकते है? प्राण ही न रहा तो धन कौन भोगेगा? चलो, अभी से ही सब बंद-संद करके चल चले। अगर जिंदा रह गए तो फिर आकर भोग करेगे।''

महेद्र ने पूछा-'' क्या तुम राह चल सकोगी? कहार सब मर ही गए है। बैल है तो गाड़ी नही है और गाड़ी है तो बैल नही है।''

कल्याणी -''तुम चिंता न करो, मै पैदल चलूंगी।''

कल्याणी ने मन-ही-मन निश्चय किया- न होगा, राह मे मरकर गिर पड़ूंगी; यह दोनो जन तो बचे रहेगे।

दूसरे दिन सबेरे, साथ मे कुछ धन लेकर घर-द्वार मे ताला बंद कर, गायो को मुक्तकर और कन्या को गोद मे लेकर दोनो जन राजधानी के लिए चल पड़े। यात्रा के समय महेद्र ने कहा- ''राह बड़ी भयानक है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे छिपे है; खाली हाथ जाना उचित नही है।'' यह कहकर महेद्र ने फिर घर मे वापस जाकर बंदूक, गोली बारूद साथ मे ले ली।

यह देखकर कल्याणी ने कहा-''अगर अस्त्र की बात याद की है तो जरा लड़की को गोद मे सम्हाल लो, मै भी हथियार ले लूं'' यह कहकर कल्याणी ने लड़की महेद्र की गोद मे देकर घर के भीतर प्रवेश किया। महेद्र ने पूछा-''तुम कौन-सा हथियार लोगी''

कल्याणी ने घर मे जाकर विष की एक डिबिया अपने कपड़ो के अंदर छिपा ली।

जेठ का महीना है। भयानक गर्मी से पृथ्वी अग्निमय हो रही है; हवा मे आग की लपट दौड़ रही है, आकाश गरम तवे की तरह जल रहा है, राह की धूल आग की चिनगारी बन गई है। कल्याणी के शरीर से पसीने की धार बहने लगी; कभी पीपल के नीचे, कभी बड़ के नीचे, कभी खजूर के नीचे छाया देखकर तिलमिलाती हुई बैठ जाती है। सूखे हुए तालाबो का कीचड़ से सना मैला जल पीकर वे लोग राह चलने लगे। लड़की महेद्र की गोद मे है- समय समय पर वे उसे पंखा हांक देते है। कभी घने हरे पत्तो से दाएं, सुगंधित फूलो वाले वृक्ष से लिपटी हुई लता की छाया मे दोनो जन बैठकर विराम करते है। महेद्र ने कल्याणी को इतना सहनशील देखकर आश्चर्य किया। पास के ही एक जलाशय से वस्त्र को जल से तर कर महेद्र ने उससे कन्या और पत्नी का जलता माथा और मुंह धोकर कुछ शांत किया।

इससे कल्याणी कुछ आश्वस्त अवश्य हुई, लेकिन दोनो ही भूख से बड़े विह्वल हुए। वे लोग तो उसे भी सहने लगे, लेकिन बालिका की भूख-प्यास उनसे बर्दाश्त न हुई, अत: वहां अधिक देर न ठहरकर वे लोग फिर

चल पड़े। उस आग के सागर को पार कर संध्या से पहले वे एक बस्ती मे पहुंचे। महेद्र के मन मे बड़ी आशा थी कि बस्ती मे पहुंचकर वे अपनी पत्नी और कन्या की शीतल जल से तृप्त कर सकेगे और प्राणरक्षा के निमित्त अपने मुंह मे भी कुछ आहार डाल सकेगे। लेकिन कहां? बसती मे तो एक भी मनुष्य दिखाई नही पड़ता। बड़े-बड़े घर सूने पड़े हुए है, सारे आदमी वहां से भाग गए है। इधर-उधर देखकर एक घर के भीतर महेद्र ने स्त्री-कन्या को बैठा दिया। बाहर आकर उन्होने जोरो से पुकारना शुरू किया, लेकिन उन्हे कोई भी उत्तर सुनाई न पड़ा। तब महेद्र ने कल्याणी से कहा-''तुम जरा साहसपूर्वक अकेली रहो; देखूं शायद कही कोई गाय दिखाई दे जाए। भगवान श्रीकृष्ण दया कर दे तो दूध ले आएं।'' यह कहकर महेद्र एक मिट्टी का बरतन हाथ मे लेकर निकल पड़े। बहुतेरे बरतन वही पड़े हुए थे।

महेद्र चले गए। कल्याणी अकेली बालिका को लिए हुए प्रायः जनशून्य स्थान मे, घर के अंदर अंधकार मे पड़ी चारो तरफ देखती रही। उसके मन मे भय का संचार हो रहा था। कही कोई नही, मनुष्य मात्र का कोई शब्द सुनाई नही पड़ता है केवल कुत्तो और स्यारो की आवाज सुनाई पड़ जाती है। सोचने लगी-''क्यो उन्हे जाने दिया? न होता, थोड़ी और भूख-प्यास बर्दाश्त करती।'' फिर सोचा--''चारो तरफ के दरवाजे बंद कर दूं।'' लेकिन एक भी दरवाजे मे किवाड़ दिखाई न दिया। इस तरह चारो तरफ देखते-देखते सहसा उसे सामने के दरवाजे पर एक छाया दिखाई दी-- मनुष्याकृति जैसा, कंकाल मात्र और कोयले की तरह काला, नग्न, विकटाकार मनुष्य जैसा कोई आकार दरवाजे पर खड़ा था। कुछ देर बाद छाया ने मानो अपना एक हाथ उठाया और हाथो की लंबी सूखी उंगलियो से संकेत कर किसी को अपने पास बुलाया। कल्याणी का प्राण सूख गया। इसके बाद वैसी ही एक छाया और- सूखी-काली, दीर्घाकार, नग्न- पहली छाया के पास आकर खड़ी हो गई। इसके बाद ही एक और एक और..... इस तरह कितने ही पिशाच आकर घर के अंदर प्रवेश करने लगे। वहां का एकांत श्मशान की तरह भयंकर दिखाई देने लगा। वह सब प्रेत जैसी मूर्तियां कल्याणी और उसकी कन्या को घेरकर खड़ी हो गई- देखकर कल्याणी भय से मूर्छित हो गई। काले नरकंकालो जैसे पुरुष कल्याणी और उसकी कन्या को उठाकर बाहर निकले और बस्ती पार कर एक जंगल मे घुस गए।

कुछ देर बाद महेद्र उस हंड़िया मे दूध लिए हुए वहां आए। उन्होने देखा कि वहां कोई नही है। इधर-उधर खोजा; पहले कन्या का नाम और फिर स्त्री का नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगे। लेकिन न तो कोई उत्तर मिला और न कुछ पता ही लगा।

जिस वन मे डाकू कल्याणी को लेकर घुसे, वह वन बड़ा ही मनोहर था। यहां रोशनी नही कि शोभा दिखाई दे, ऐसी आंखे भी नही कि दरिद्र के हृदय के सौंदर्य की तरह उस वन का सौंदर्य भी देख सके। देश मे आहार द्रव्य रहे या न रहे- वन मे फूल है; फूलो की सुगंध से मानो उस अंधकार मे प्रकाश हो रहा है। बीच की साफ-सुकोमल और पुष्पावृत जमीन पर डाकुओ ने कल्याणी और उसकी कन्या को उतारा और सब उन्हे घेरकर बैठ गए। इसके बाद उन सब मे यह बहस चली कि इन लोगो का क्या किया जाए? कल्याणी को जो कुछ गहने थे, उन्हे डाकुओ ने पहले ही हस्तगत कर लिया। एक दल उसके हिस्से-बखरे मे व्यस्त हो गया। गहनो के बंट जाने पर एक डाकू ने कहा-''हम लोग सोना-चांदी लेकर क्या करेगे? एक गहना लेकर कोई मुझे भोजन दे, भूख से प्राण जाते है-आज सबेरे केवल पत्ते खाए है।''

एक के यह करने पर सभी इसी तरह हल्ला मचाने लगे- 'भारत दो, हम भूख से मर रहे है, सोना-चांदी नही चाहते।'... दलपति उन्हे शांत करने लगा, लेकिन कौन सुनता है; क्रमशः ऊंचे स्वर मे बाते शुरू हुई, फिर गाली-गलौच शुरू हुई, मार-पीट की भी तैयारी होने लगी। जिसे-जिसे हिस्से मे गहने मिले थे, वे लोग

अपने-अपने हिस्से के गहने खींच-खीचकर दलपति के शरीर पर मारने लगे। दलपति ने भी दो-एक को मारा। इस पर सब मिलकर आक्रमण कर दलपति पर आघात करने लगे। दलपति अनाहार से कमजोर और अधमरा तो आप ही था, दो-चार आघार मे ही गिरकर मर गया। उन भूखे, पीड़ित, उत्तेजित और दयाशून्य डाकुओ मे से एक ने कहा--''स्यार का मांस खा चुके है, भूख से प्राण जा रहा है, आओ भाई आज इसी साले को खा ले।'' इस पर सबने मिलकर ''जयकाली'' कहकर जयघोष किया--''जय काली! आज नर-मांस खाएंगे।'' यह कहकर वह सब नरकंकाल रूपधारी खिलखिलाकर हंस पड़े और तालियां बजाते हुए नाचने लगे। एक दलपति के शरीर को भूनने के लिए आग जलाने का इंतजाम करने लगा। लता-डालियां और पत्ते संग्रह कर, उसने चकमक पत्थर द्वारा आग पैदा कर उसे धधकाया; धधक कर आग जल उठी। आग की लपट के पास के आम, खजूर, पनस, नीबू आदि के वृक्षो के कोमल हरे पत्ते चमकने लगे। कही पत्ते जलने लगे, कही घास पर रोशनी से हरियाली हुई तो कही अंधेरा और गाढ़ा हो गया। आग जल जाने पर कुछ लोग दलपति के कंकाल को आग मे फेकने के लिए घसीटकर लाने लगे।

इसी समय एक बोल उठा-''ठहरो, ठहरो! अगर यह मांस ही खाकर आज भूख मिटानी है, तो इस सूखे नरकंकाल को न भूनकर, आओ इस कोमल लड़की को ही भूनकर खाया जाए''

एक बोला-''जो हो, भैया ! एक को भूनो ! हम तो भूख से मर रहे है।'' इस पर सबने लोलुप दृष्टि से उधर देखा, जिधर अपनी कन्या को लिए हुए कल्याणी पड़ी थी। उस सबने देखा कि वह स्थान सूना था, न कन्या थी और न माता ही। डाकुओ के आपसी विवाद और मारपीट के समय सुयोग पाकर कल्याणी गोद मे बच्ची को चिपकाए वन के भीतर भाग गई। शिकार को भागा देखकर वह प्रेत-दल मार-मार करता हुआ चारो तरफ उन्हे पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। अवस्था विशेष मे मनुष्य पशुमात्र रह जाता है।

जंगल के भीतर घनघोर अंधकार है। कल्याणी को उधर राह मिलना मुश्किल हो गया। वृक्ष-लताओ के झुरमुट के कारण एक तो राह कठिन, दूसरे रात का घना अंधेरा। कांटो से विंधती हुई कल्याणी उन आदमखोरो से बचने के लिए भागी जा रही थी। बेचारी कोमल लड़की को भी कांटे लग रहे थे। अबोध बालिका गोद मे चीखकर रोने लगी; उसका रोना सुनकर दस्युदल और चीत्कार करने लगा। फिर भी, कल्याणी पागलो की तरह जंगल मे तीर की तरह घुसती भागी जा रही थी। थोड़ी ही देर मे चंद्रोदय हुआ। अब तक कल्याणी के मन मे भरोसा था कि अंधेरे मे नर-पिशाच उसे देख न सकेगे, कुछ देर परेशान होकर पीछा छोड़कर लौट जाएंगे, लेकिन अब चांद का प्रकाश फैलने से वह अधीर हो उठी। चन्द्रमा ने आकाश मे ऊंचे उठकर वन पर अपना रुपहला आवरण पैला दिया, जंगल का भीतरी हिस्सा अंधेरे मे चांदनी से चमक उठा- अंधकार मे भी एक तरह की उज्ज्वलता फैल गई- चांदनी वन के भीतर छिद्रो से घुसकर आंखमिचौनी करने लगी। चंद्रमा जैसे-जैसे ऊपर उठने लगा, वैसे-वैसे प्रकाश फैलने लगा जंग को अंधकार अपने मे समेटने लगा। कल्याणी पुत्री को गोद मे लिए हुए और गहन वन मे जाकर छिपने लगी। उजाला पाकर दस्युदल और अधिक शोर मचाते हुए दौड़-धूप कर खोज करने लगे। कन्या भी शोर सुनकर और जोर से चिल्लाने लगी। अब कल्याणी भी थककर चूर हो गई थी; वह भागना छोड़कर वटवृक्ष के नीचे साफ जगह देखकर कोमल पत्तियो पर बैठ गई और भगवान को बुलाने लगी-''कहां हो तुम? जिनकी मै नित्य पूजा करती थी, नित्य नमस्कार करती थी, जिनके एकमात्र भरोसे पर इस जंगल मे घुसने का साहस कर सकी.......'' ...कहां हो, हे मधुसूदन!'' इस समय भय और भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख-प्यास से थकावट से कल्याणी धीरे अचेत होने लगी; लेकिन आंतरिक चैतन्य से उसने सुना, अंतरिक्ष मे स्वर्गीय गीत हो रहा है-

''हरे मुरारे! मधुकैटभारे! गोपाल, गोविंद मुकुंद प्यारे! हरे मुरारे मधुकैटभारे!.......''

कल्याणी बचपन से पुराणो का वर्णन सुनती आती थी कि देवर्षि नारद हाथों मे वीणा लिए हुए आकाश पथ से भुवन-भ्रमण किया करते है- उसके ह्रदय मे वही कल्पना जागरित होने लगी। मन-ही-मन वह देखने लगी- शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन महामति महामुनि वीणा लिए हुए, चांदनी से चमकते आकाश की राह पर गाते आ रहे है ।

''हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.......''

क्रमश: गीत निकट आता हुआ, और भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा-

''हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.......''

क्रमश: और भी निकट, और भी स्पष्ट-

''हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.......''

अंत मे कल्याणी के मस्तक पर, वनस्थली मे प्रतिध्वनित होता हुआ गीत होने लगा-

''हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.......''

कल्याणी ने अपनी आंखे खोली। धुंधले अंधेरे की चांदी मे उसने देखा- सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन ऋषिमूर्ति खड़ी है। विकृत मस्तिष्क और अर्धचेतन अवस्था मे कल्याणी ने मन मे सोचा-- प्रणाम करूं, लेकिन सिर झुकाने से पहले ही वह फिर अचेत हो गयी और गिर पड़ी।

इसी वन मे एक बहुत विस्तृत भूमि पर ठोस पत्थरो से मिर्मित एक बहुत बड़ा मठ है। पुरातत्त्ववेत्ता उसे देखकर कह सकते हैं कि पूर्वकाल मे यह बौद्धो का विहार था- इसके बाद हिंदुओ का मठ हो गया है। दो खंडो मे अट्टालिकाएं बनी है, उसमे अनेक देव-मंदिर और सामने नाट्यमंदिर है। वह समूचा मठ चहारदीवारी से घिरा हुआ है और बाहरी हिस्सा ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्षों से इस तरह आच्छादित है कि दिन मे समीप जाकर भी कोई यह नही जान सकता कि यहां इतना बड़ा मठ है। यो तो प्राचीन होने के कारण मठ की दीवारे अनेक स्थानो से टूट-फूट गई है, लेकिन दिन मे देखने ने से साफ पता लगेगा कि अभी हाल ही मे उसे बनाया गया है। देखने से तो यही जान पड़ेगा कि इस दुर्भेद्य वन के अंदर कोई मनुष्य रहता न होगा। उस अट्टालिका की एक कोठरी मे लकड़ी का बहुत बड़ा कुन्दा जल रहा था। आंख खुलने पर कल्याणी ने देखा कि सामने ही वह ऋषि महात्मा बैठे है। कल्याणी बड़े आश्चर्य से चारो तरफ देखने लगी। अभी उसकी स्मृति पूरी तरह जागी न थी। यह देखकर महापुरुष ने कहा- ''बेटी! यह देवताओं का मंदिर है, डरना नही। थोड़ा दूध है, उसे पियो; फिर तुमसे बाते होगी।''

पहले तो कल्याणी कुछ समझ न सकी, लेकिन धीरे-धीरे उसके ह्रदय मे जब धीरज हुआ तो उसने उठकर अपने गले मे आंचल डालकर, जमीन से मस्तक लगाकर प्रणाम किया। महात्माजी ने सुमंगल आशीर्वाद देकर दूसरे कमरे से एक सुगंधित मिट्टी का बरतन लाकर उसमे दूध गरम किया। दूध के गरम हो जने पर उसे कल्याणी को देकर बोले- ''बेटी! दूध कन्या को भी पिलाओ, स्वयं भी पियो, उसके बाद बाते करना।'' कल्याणी संतुष्ट ह्रदय से कन्या को दूध पिलाने लगी। इसके बाद उस महात्मा ने कहा- ''मै जब तक न आऊं, कोई चिंता न करना।'' यह कहकर कमरे के बाहर चले गए। कुछ देर बाद उन्होने लौटकर देखा कि कल्याणी ने कन्या को तो दूध पिला दिया है, लेकिन स्वयं कुछ नही पिया। जो दूध रखा हुआ था, उसमें से बहुत थोड़ा खर्च हुआ था। इस पर महात्मा ने कहा- ''बेटी! तुमने दूध नही पिया? मै फिर बाहर जाता हूं; जब तक तुम दूध न पियोगी, मै वापस न आऊंगा।''

वह ऋषितुल्य महात्मा यह कहकर बाहर जा रहे थे; इसी समय कल्याणी फिर प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ी हो गई।

महात्मा ने पूछा-''क्या कहना चाहती हो?''

कल्याणी ने हाथ जोड़े हुए कहा- ''मुझे दूध पीने की आज्ञा न दे। उसमे एक बाधा है, मै पी न सकूंगी।............''

इस पर महात्मा ने दु:खी हृदय से कहा- ''क्या बाधा है? मै ब्रह्मचारी हूं, तुम मेरी कन्या के समान हो; ऐसी कौन बात हो सकती है जो मुझसे कह न सको? मै जब तुम्हे वन से उठाकर यहां ले आया, तो तुम अत्यंत भूख प्यास से अवसन्न थी, तुम यदि दूध न पियोगी तो कैसे बचोगी?''

इस पर कल्याणी ने भरी आंखे और भरे गले से कहा- ''आप देवता है, आपसे अवश्य निवेदन करूंगी - अभी तक मेरे स्वामी ने कुछ नही खाया है, उनसे मुलाकात हुए बिना या संवाद मिले बिना मै भोजन न कर सकूंगी। मै कैसे खाऊंगी....''

ब्रह्मचारी ने पूछा- ''तुम्हारे पतिदेव कहां है?''

कल्याणी बोली- ''यह मुझे मालूम नही- दूध की खोज मे उनके बाहर निकलने पर ही डाकू मुझे उठा ले गए'' इस पर ब्रह्मचारी ने एक-एक बात पूछकर कल्याणी से उसके पति का सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणी ने पति का नाम नही बताया, बता भी नही सकती थी, किंतु अन्याय परिचयो से ब्रह्मचारी समझ गए। उन्होने पूछा- ''तुम्ही महेद्र की पी हो?'' इसका कोई उत्तर न देकर कल्याणी सिर झुका कर, जलती हुई आग मे लकड़ी लगाने लगी। ब्रह्मचारी ने समझकर कहा- ''तुम मेरी बात मानो, मै तुम्हारे पति की खोज करता हूं। लेकिन जब तक दूध न पिओगी, मै न जाऊंगा?''

कल्याणी पूछा- ''यहां थोड़ा जल मिलेगा?''

ब्रह्मचारी ने जल का कलश दिखा दिया। कल्याणी ने अंजलि रोपी, ब्रह्मचारी ने जल डाल दिया। कल्याणी ने उस जल की अंजलि को महात्मा के चरणो के पास ले जाकर कहा- ''इसमे कृपा कर पदरेणु दे दे।'' महात्मा के अंगूठे द्वारा छू देने पर कल्याणी ने उसे पीकर कहा- ''मैने अमृतपान कर लिया है। अब और कुछ खाने-पीने को न कहिए। जब तक पतिदेव का पता न लगेगा मै कुछ न खाऊंगी।''

इस पर ब्रह्मचारी ने संतुष्ट होकर कहा- ''तुम इसी देवस्थान मे रहो। मै तुम्हारे पति की खोज मे जाता हूं।'' रात काफी बीत चुकी है। चंद्रमा माथे के ऊपर है। पूर्ण चंद्र नही है, इसलिए चांदनी भी चटकीली नही- फीकी है। जंगल के बहुत बड़े हिस्से पर अंधकार मे धुंधली रोशनी पड़ रही है। इस प्रकाश मे मठ के इस पार से दूसरा किनारा दिखाई नही पड़ता। मठ मानो एकदम जनशून्य है- देखने से यही मालूम होता है। इस मठ के समीप से मुर्शिदाबाद और कलकत्ते को राह जाती है। राह के किनारे ही एक छोटी पहाड़ी है, जिस पर आम के अनेक पेड़ है। वृक्षो की चोटी चांदनी से चमकती हुई कांप रही है, वृक्षो के नीचे पत्थर पर पड़नेवाली छाया भी कांप रही है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर न जाने क्या सुनने लगे। नही कहा जा सकता कि वे क्या सुन रहे थे। इस अनंत जंगल मे पूर्ण शांति थी- कही ऐसे ही पत्तो की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। पहाड़ की तराई मे एक जगह भयानक जंगल है। ऊपर पहाड़ नीचे जंगल बीच मे वह राह है। नही कह सकते कि उधर कैसी आवाज हुई जिसे सुनकर ब्रह्मचारी उसी ओर चल पड़े। उन्होने भयानक जंगल मे प्रवेश कर देखा कि वहां एक घने स्थान में वृक्षो की छाया मे बहुतेरे आदमी बैठे है। वे सब मनुष्य लंबे, काले, और सशस्त्र थे पेड़ो की छाया को भेदकर आनेवाली चांदनी उनके शस्त्रो को चमका रही थी। ऐसे ही दो सौ आदमी बैठे है और सब शांत, चुप है। ब्रह्मचारी उनके बीच मे जाकर खड़े हो गए और उन्होने कुछ इशारा कर दिया,

जिससे कोई भी उठकर खड़ा न हुआ। इसके बाद वह तपस्वी महात्मा एक तरफ से लोगो को चेहरा गौर से देखते हुए आगे बढ़ने लगे, जैसे किसी को खोजते हो। खोजते-खोजते अन्त मे वह पुरुष मिला और ब्रह्मचारी के उसका अंग स्पर्श कर इशारा करते ही वह उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे साथ लेकर दूर आड़ मे चले गए। वह पुरुष युवक और बलिष्ठ था- लंबे घुंघराले बाल कंधे पर लहरा रहे थे। पुरुष अतीव सुंदर था। गैरिक वस्त्रधारी तथा चंदनचर्चित अंगवाले ब्रह्मचारी ने उस पुरुष से कहा- ''भवानंद! महेद्र सिंह की कुछ खबर मिली है?''

इस पर भवानंद ने कहाझ्स-''आज सबेरे महेद्रसिंह अपनी पी और कन्या के साथ गृह त्यागकर बाहर निकले है-बस्ती मे..........''

इतना सुनते ही ब्रह्मचारी ने बात काटकर कहा-''बस्ती मे जो घटना हुई है, मै जानता हूं। किसने ऐसा किया?''

भवानंद-''गांव के ही किसान लोग थे। इस समय तो गांवो के किसान भी पेट की ज्वाला से डाकू हो गए है। आजकल कौन डाकू नही है? हम लोगो ने भी आज लूट की है- दारोगा साहब के लिए दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवो को भोग लगा दिया है।''

ब्रह्मचारी ने कहा-''चोरो के हाथ से तो हमने स्त्री-कन्या का उद्धार कर लिया है। इस समय उन्हे मठ मे बैठा आया हूं। अब यह भार तुम्हारे ऊपर है कि महेद्र को खोजकर उनकी स्त्री-कन्या उनके हवाले कर दो। यहां जीवानंद के रहने से काम हो जाएगा।''

भवानंद ने स्वीकार कर लिया। तब ब्रह्मचारी दूसरी जगह चले गए।

बस्ती मे बैठे रहने और सोचते रहने का कोई प्रतिफल न होगा- यह सोचकर महेद्र वहां से उठे। नगर में जाकर राजपुरुषो की सहायता से स्त्री-कन्या का पता लगवाएं- यह सोचकर महेद्र उसी तरफ चले। कुछ दूर जाकर राह मे उन्होने देखा कि कितनी ही बैलगाड़ियो को घेरकर बहुतेरे सिपाही चले आ रहे है।

बंगला सन् 1173 मे बंगाल प्रदेश अंगरेजो के शासनाधीन नही हुआ था। अंगरेज उस समय बंगाल के दीवान ही थे। वे खजाने का रुपया वसूलते थे, लेकिन तब तक बंगालियो की रक्षा का भार उन्होने अपने ऊपर लिया न था। उस समय लगान की वसूली का भार अंगरेजो पर था, और कुल सम्पत्ति की रक्षा का भार पापिष्ट, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्य-कुलकलंक मीरजाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा मे ही अक्षम था, तो बंगाल प्रदेश की रक्षा कैसे कर सकता था? मीरजाफर सिर्फ अफीम पीता था और सोता था, अंगरेज ही अपने जिम्मे का सारा कार्य करते थे। बंगाली रोते थे और कंगाल हुए जाते थे।

अत: बंगाल का कर अंगरेजो को प्राप्य था, लेकिन शासन का भार नवाब पर था। जहां-जहां अंगरेज अपने प्राप्य कर की स्वयं अदायगी कराते थे, वहां-वहा उन्होने अपनी तरफ से कलेक्टर नियुक्त कर दिए थे। लेकिन मालगुजारी प्राप्त होने पर कलकत्ते जाती थी। जनता भूख से चाहे मर जाए, लेकिन मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। फिर भी मालगुजारी पूरी तरह वसूल नही हुई थी- कारण, माता-वसुमती के बिना धन-प्रसव किए, जनता अपने पास के कैसे गढ़कर दे सकती थी? जो हो, जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसे गाड़ियो पर लादकर सिपाहियो के पहरे मे कलकत्ते भेजा जा रहा था- धन कंपनी के खजाने मे जमा होता। आजकल डाकुओ का उत्पात बहुत बढ़ गया है, इसीलिए पचास सशस्त्र सिपाही गाड़ी के आगे-पीछे संगीन खड़ी किए, कतार मे चल रहे थे : उनका अध्यक्ष एक गोरा था जो सबसे पीछे घोड़े पर था। गरमी की भयानकता के कारण सिपाही दिन मे न चलकर रात को सफर करते थे। चलते-चलते उन गाड़ियो और सिपाहियो के कारण महेद्र की राह रुक गई। इस तरह राह रुकी होने के कारण थोड़ी देर के लिए महेद्र सड़क के किनारे खड़े हो गए। फिर भी सिपाहियो के

शरीर से धक्का लग सकता था, और झगड़ा बचाने के ख्याल से वे कुछ हटकर जंगल के किनारे खड़े हो गए।
इसी समय एक सिपाही बोला--''यह देखो, एक डाकू भागता है।'' महेद्र के हाथ मे बंदूक देखकर उसका विश्वास दृढ़ हो गया। वह दौड़कर पहुंचा और एकाएक महेद्र का गला पकड़कर साले चोर! कहकर उन्हे एक घूंसा जमाया और बंदूक छीन ली। खाली हाथ महेद्र ने केवल घूंसे का जवाब घूंसे से दिया। महेद्र को अचानक इस बर्ताव पर क्रोध आ गया था, यह कहना ही व्यर्थ है! घूंसा खाकर सिपाही चक्कर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इस पर अन्य चार सिपाहियो ने आकर महेद्र को पकड़ लिया और उन्हे उस गोरे सेनापति के पास ले गए। अभियोग लगाया कि इसने एक सिपाही का खून किया है। गोरा साहब पाइप से तमाखू पी रहा था, नशे के झोके मे बोला--''साले को पकड़कर शादी कर लो।'' सिपाही हक्का-बक्का हो रहे थे कि बंदूकधारी डाकू से सिपाही कैसे शादी कर ले? लेकिन नशा उतरने पर साहब का मत बदल सकता है कि शादी कैसे होगी- यही विचार कर सिपाहियो ने एक रस्सी लेकर महेद्र के हाथ-पैर बांध दिए और गाड़ी पर डाल दिया। महेद्र ने सोचा कि इतने सिपाहियो के रहते जो लगाना व्यर्थ है, इसका कोई फल न होगा; दूसरे स्त्री-कन्या के गायब होने के कारण महेद्र बहुत दु:खी और निराश थे; सोचा-- अच्छा है, मर जाना ही अच्छा है! सिपाहियो ने उन्हे गाड़ी के बल्ले से अच्छी तरह बांध दिया और इसके बाद धीर-गंभीर चाल से वे लोग फिर पहले की तरह चलने लगे।

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानंद धीरे-धीरे हरिकीर्त्तन करते हुए उस बस्ती की तरफ चले, जहां महेद्र का कन्या-पत्नी से वियोग हुआ था। उन्होने विवेचन किया कि महेद्र का पता वही से लगना संभव है।
उस समय अंग्रेजो की बनवायी हुई आधुनिक राहे न थी। किसी भी नगर से कलकत्ते जाने के लिए मुगल-सम्राटो की बनायी राह से ही जाना पड़ता था। महेद्र भी पदचिह्न से नगर जाने के लिए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। भवानंद ताल-पहाड़ से जिस बस्ती की तरफ आगे बढ़े, वह भी दक्षिण से उत्तर पड़ती थी। जाते-जाते उनका भी उन धन-रक्षक सिपाहियो से साक्षात हो गया। भवानंद भी सिपाहियो की बगल से निकले। एक तो सिपाहियो का विश्वास था कि इस खजाने को लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करेगे, उस पर राह मे एक डाकू- महेद्र को गिरफ्तार कर चुके थे, अत: भवानंद को भी राह मे पाकर उनका विश्वास हो गया कि यह भी डाकू है। अतएव तुरंत उन सबने भवानंद को भी पकड़ लिया। भवननंद ने मुस्करा कर कहा-''ऐसा क्यो भाई?''
सिपाही बोला-''तुम साले डाकू हो!''
भवानंद-''देख तो रहे तो, गेरुआ कपड़ा पहने मै ब्रह्मचारी हूं....... डाकू क्या मेरे जैसे होते हैं?''
सिपाही-''बहुतेरे साले ब्रह्मचारी-संन्यासी डकैत रहते है।''
यह कहते हुए सिपाही भवानंद के गले पर धक्का दे खीच लाए। अंधकार मे भवानंद की आंखो से आग निकलने लगी, लेकिन उन्होने और कुछ न कर विनीत भाव से कहा-''हुजूर! आज्ञा करो, क्या करना होगा?''
भवानंद की वाणी से संतुष्ट होकर सिपाही ने कहा-''लो साले! सिर पर यह बोझ लादकर चलो।'' यह कहकर सिपाही ने भवानंद के सिर पर एक गठरी लाद दी। यह देख एक दूसरा सिपाही बोला-''नही-नही भाग जाएगा। इस साले को भी वहां पहलेवाले की तरह बांधकर गाड़ी पर बैठा दो।'' इस पर भवानंद को और उत्कंठा हुई कि पहले किसे बांधा है, देखना चाहिए। यह विचार कर भवानंद ने गठरी फेक दी और पहले सिपाही को एक थप्पड़ जमाया। अत: अब सिपाहियो ने उन्हे भी बांधकर गाड़ी पर महेद्र की बगल मे डाल दिया। भवानंद पहचान गए कि यही महेद्रसिंह है।

सिपाही फिर निश्चिंत हो कोलाहल मचाते हुए आगे बढ़े। गाड़ी का पहिया 'घड़-घड़' शब्द करता हुआ घूमने लगा। भवानंद ने अतीव धीमे स्वर मे, ताकि महेद्र ही सुन सके, कहा-''महेद्रसिंह! मै तुम्हे पहचानता हूं। तुम्हारी सहायता करने के लिए ही यहां आया हूं। मै कौन हूं यह भी तुम्हे सुनने की जरूरत नही। मै जो कहता हूं, सावधान होकर वही करो! तुम अपने हाथ के बंधन गाड़ी के पहिये के ऊपर रखो।''
महेद्र विस्मित हुए, फिर भी उन्होंने बिना कहे-सुने भवानंद के मतानुसार कार्य किया- अंधकार मे गाड़ी के चक्के की तरफ जरा खिसककर उन्होने अपने हाथ के बंधनो को पहिये के ऊपर लगाया। थोड़ी ही देर मे उनके हाथ के बंधन कटकर खुल गए। इस तरह बंधन से मुक्त होकर वे चुपचाप गाड़ी पर लेट रहे। भवानंद ने भी उसी तरह अपने को बंधनो से मुक्त किया। दोनों ही चुपचाप लेटे रहे।

जिस जगह जंगल के समीप राज-पथ पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारो ओर देखा था उसी राह से इन लोगो को गुजरना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचने पर सिपाहियो ने देखा कि एक शिलाखंड पर जंगल के किनारे एक पुरुष खड़ा है। हलकी चांदनी मे उस पुरुष का काला शरीर चमकता हुआ देखकर सिपाही बोला--''देखो एक साला और यहां खड़ा है।'' इस पर उसे पकड़ने के लिए एक आदमी दौड़ा, लेकिन वह आदमी वही खड़ा रहा, भागा नही- पकड़कर हवलदार के पास ले आने पर भी वह व्यक्ति कुछ न बोला। हवलदार ने कहा-''इस साले के सिर पर गठरी लादो!'' सिपाहियो के एक भारी गठरी देने पर उसने भी सिर पर ले ली। तब हवलदार पीछे पलटकर गाड़ी के साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल चलने की आवाज हुई- हवलदार माथे मे गोली खाकर गिर पड़ा।

''इसी साले ने हवलदार को मारा है!'' कहकर एक सिपाही ने उस मोटिया का हाथ पकड़ लिया। मोटिये के हाथ मे तब तक पिस्तौल थी। मोटिये ने अपने सिर का बोझ फेककर और तुरंत पलटकर उस सिपाही के माथे पर आघात किया, सिपाही का माथा फट गया और जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय ''हरि! हरि! हरि!'' पुकारता दो सौ व्यक्तियो ने आकर सिपाहियो को घेर लिया। सिपाही गोरे साहब के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब भी डाका पड़ा है- विचार कर तुरंत गाड़ी के पास पहुंचा और सिपाहियो को चौकोर खड़े होने की आज्ञा दी। अंग्रेजों का नशा विपद् के समय नही रहता। सिपाहियो के उस तरह खड़े होते ही दूसरी आज्ञा से उन्होने अपनी-अपनी बंदूके संभाली। इसी समय एकाएक साहब की कमर की तलवार किसी ने छीन ली और फौरन उसने एक बार मे साहब का सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया- साहब का धड़ घोड़े से गिरा। फायर करने का हुक्म वह दे न सका। तब लोगो ने देखा कि एक व्यक्ति गाड़ी पर हाथ मे नंगी तलवार लिए हुए ललकार रहा है- ''मारो, सिपाहियो को मारो..........मारो! साथ ही हरि हरि!'' का जय नाद भी करता जाता है। वह व्यक्ति और कोई नही भवानंद था।

एकाएक अपने साहब को मरा हुआ देख और अपनी रक्षा के लिए किसी को आज्ञा देते न देखकर सरकारी सिपाही डटकर भी निश्चेष्ट हो गए। इस अवसर पर तेजस्वी डाकुओ ने अपने सिपाहियो को हताहत कर आगे बढ़, गाड़ी पर रखे हुए खजाने पर अधिकार जमा लिया। सरकारी फौजी टुकड़ी भयभीत होकर भागी।

अंत मे वह व्यक्ति सामने आया जो दल का नेतृत्व करता था और पहाड़ी पर खड़ा था। उसने आकर भवानंद को गले लगा लिया। भवानंद ने कहा-''भाई जीवानंद! तुम्हारा नाम सार्थक हो?''

इसके बाद अपहृत धन को यथास्थान भेजने का भार जीवानंद पर रहा। वह अपने अनुचरो के साथ खजाना लेकर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान मे चले गए। भवानंद अकेले खड़े रह गए।

बैलगाड़ी पर से कूदकर एक सिपाही की तलवार छीनकर महेद्र सिंह ने भी चाहा कि युद्ध मे योग दे। लेकिन इसी समय उन्हे प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि युद्ध मे लगा हुआ दल और कुछ नही, डाकुओ का दल है–धन छीनने के लिए इन लोगो ने सिपाहियो पर आक्रमण किया है। यह विचार कर महेद्र युद्ध से विरत हो दूर जा खड़े हुए। उन्होने सोचा कि डाकुओ का साथ देने से उन्हे भी दुराचार का भागी बनना पड़ेगा। वे तलवार फेककर धीरे-धीरे वह स्थान त्यागकर जा रहे थे, इसी समय भवानंद उसके पास आकर खड़े हो गए। महेद्र ने पूछा–
''महाशय! आप कौन है?''

भवानंद ने कहा–''इससे तुम्हे क्या प्रयोजन है?''

महेद्र–''मेरा कुछ प्रयोजन है– आज आपके द्वारा मै विशेष उपकृत हुआ हूं।''

भवानन्द–''मुझे ऐसा नही था कि तुम्हे इतना ज्ञान है। हाथो मे हथियार रहते हुए भी तुम युद्ध से विरत रहे..... जमीदारो के लड़के घी-दूध का श्राद्ध करना तो जानते है, लेकिन काम के समय बंदर बन जाते है!''

भवानंद की बात समाप्त होते-न-होते महेद्र घृणा के साथ कहा–''यह तो अपराध है, डकैती है''

भवानंद ने कहा–'' हां डकैती! हम लोगो के द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हुआ था, साथ ही और भी कुछ उपकार कर देने की इच्छा है!''

महेद्र–''तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है लेकिन और क्या उपकार करोगे? फिर डाकुओ द्वारा उपकृत होने के बदले अनुपकृत होना ही अच्छा है।''

भवानंद–''उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, तुम्हारी स्त्री-कन्या से मुलाकात करा दूंगा!''

महेद्र पलटकर खड़े हो गए, बोले–''क्या कहा?''

भवानंद ने इसका कोई जवाब न देकर पैर बढ़ाया।

अंत मे महेद्र भी साथ-साथ आने लगे, साथ ही मन-ही-मन सोचते जाते थे-यह सब कैसे डाकू है?........ स चांदनी रात मे दोनो ही जंगल पार करते हुए चले जा रहे थे। महेद्र चुप, शांत, गर्वित और कुछ कौतूहल मे भी थे।

सहसा भवानंद ने भिन्न रूप रूप धारण कर लिया। वे अब स्थित-मूर्ति, धीर-प्रवृत्ति सन्यासी न रहे– वह रणनिपुण वीरमूर्ति, अंग्रेज सेनाध्यक्ष का सिर काटने वाला रुद्ररूप अब न रहा। अभी जिस गर्वित भाव से वे महेद्र का तिरस्कार कर रहे थे, अब भवानंद वह न थे– मानो ज्योत्सनामयी, शांतिमयी पृथिवी की तरु-कानन-नद-नदीमय शोभा निरखकर उसके चित्त मे विशेष परिवर्तन हो गया हो। चन्द्रोदय होने पर समुद्र मानो हंस उठा। भवानंद हंसमुख, मुखर, प्रियसंभाषी बन गए और बातचीत के लिए बहुत बेचैन हो उठे। भवानंद ने बातचीत करने के अनेक उपाय रचे, लेकिन महेन्द्र चुप ही रहे। तब निरुपाय होकर भवानंद ने गाना शुरू किया–

''वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्...........।''

महेद्र गाना सुनकर कुछ आश्चर्य मे आए। वे कुछ समझ न सके– सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्यश्यामला माता कौन है? उन्होने पूछा–''यह माता कौन है?''

कोई उत्तर न देकर भवानंद गाते रहे–

''शुभ्रज्योत्सना पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्

सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्। ''.....

महेद्र बोले-''यह तो देश है, यह तो मां नही है।''

भवानंद ने कहा -''हमलोग दूसरी किसी मां को नही मानते। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'- हमारी माता, जन्मभूमि ही हमारी जननी है- हमारे न मां है, न पिता है, न भाई है- कुछ नही है, स्त्री भी नही, घर भी नही, मकान भी नही, हमारी अगर कोई है तो वही सुजला, सुफला, मलयजसमीरण-शीतला, शस्यश्यामला.....''

अब महेद्र ने समझकर कहा -''तो फिर गाओ!''

भवानंद फिर गाने लगे-

''वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम

शस्यश्यामलां मातरम्...........।''

''शुभ्र ज्योत्सना-पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्

सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां, वरदां मातरम्।।

वन्दे मातरम्.........

सप्तकोटिकण्ठ-कलकल निनादकराले,

द्विसप्तकोटि भुजैर्धृत खरकरवाले,

अबला केनो मां तुमि एतो बले!

बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्

रिपुदलवारिणीम् मातरम्॥ वन्दे........

तुमी विद्या, तुमी धर्म,

तुमी हरि, तुमी कर्म,

त्वं हि प्राण : शरीरे।

बाहुते तुमी मां शक्ति,

हृदये तुमी मां भक्ति,

तोमारई प्रतिमा गड़ी मन्दिरे-मन्दिरे।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी,

कमला कमल-दल-विहारिणी,

वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वं

नमामि कमलां, अमलां, अतुलाम,

सुजलां, सुफलां, मातरम्

वन्दे मातरम्॥

श्यामलां, सरलां, सुस्मितां, भूषिताम्

धरणी, भरणी मातरम्॥ वन्दे मातरम्...''

महेद्र ने देखा दस्यु गाते-गाते रोने लगा। तब महेद्र ने विस्मय से पूछा- ''तुमलोग कौन हो?''
भवानंद ने उत्तर दिया -''हमलोग संतान है।''
महेद्र -''संतान क्या? किसकी संतान है?''
भवानंद -''माता की संतान!''
महेद्र -''ठीक ! तो क्या संतान लोग चोरी-डकैती करके मां की पूजा करते है? यह कैसी मातृभक्ति?''
भवानंद -''हम लोग चोरी-डकैती नही करते........''
महेद्र -''अभी तो गाड़ी लूटी है......?''
भवानंद -''यह क्या चोरी-डकैती है! किसके रुपये लुटे है?''
महेद्र -''क्यो ? राजा के !''
भवानंद -''राजा के! वह क्यो इन रुपयो को लेगा- इन रुपयो पर उसका क्या अधिकार है?''
महेद्र -''राजा का राज-भाग।''
भवानंद-''जो राजा राज्य प्रबंध न करे, जनता-जनार्दन की सेवा न करे, वह राजा कैसे हुआ?''
महेद्र-''देखता हूं, तुम लोग किसी दिन फौजी की तोपो के मुंह पर उड़ जाओगे।''
भवानंद -''अनेक साले सिपाहियो को देख चुका हूं, अभी आज भी तो देखा है!''
महेद्र -''अच्छी तरह नही देखा, एक दिन देखोगे!''
भवानंद -''सब देख चुका हूं। एक बार से दो बार तो मनुष्य मर नही सकता।''
महेद्र -''जान-बूझकर मरने की क्या जरूरत है?''
भवानंद -''महेद्र सिंह! मेरा ख्याल था कि तुम मनुष्यो के समान मनुष्य होगे। लेकिन देखा- जैसे सब है, वैसे तुम भी हो- घी-दूध खाकर भी दम नही। देखो, सांप मिट्टी मे अपने पेट को घसीटता हुआ चलता है- उससे बढ़कर तो शायद हीन कोई न होगा; लेकिन उसके शरीर पर भी पैर रख देने पर वह फन काढ़ लेता है। तुम लोगो का धैर्य

क्या किसी तरह भी नष्ट नही होता? देखो, कितने देशी शहर है- मगध, मिथिला, काशी, कराची, दिल्ली, काश्मीर- उन जगहो की ऐसी दुर्दशा है? किस देश के मनुष्य भोजन के अभाव मे घास खा रहे है? किस देश की जनता कांटे खाती है, लता-पत्ता खाती है? किस देश के मनुष्य स्यार, कुत्ते और मुर्दे खाते है? आदमी अपने संदूक मे धन रखकर भी निश्चित नही है- सिंहासन पर शालिग्राम बैठाकर निश्चित नही है- घर मे बहू-नौकर-मजदूरनी रखकर निश्चित नही है! हर देश का राजा अपनी प्रजा की दशा का, भरण-पोषण का ख्याल रखता है; हमारे देश का मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा कर रहा है? धर्म गया, जाति गई, मन गया- अब तो प्राणो पर बाजी आ गई है। इन नशेबाज दाड़ीवालो को बिना भगाए क्या हिंदू हिंदू रह जाएंगे?''
महेद्र- ''कैसे भगाओगे?''
भवानंद -''मारकर!''
महेद्र-''तुम अकेले भगाओगे- एक थप्पड़ मारकर क्या?''
भवानंद ने फिर गाया-
''सप्तकोटि कण्ठ कलकल निनादकराले,
द्विसप्तकोटिभुजैर्धृत खरकरवाले,
अबला केनो मां एतो बले।''

महेद्र –''किंतु देखता हूं, तुम तो अकेले हो?''

भवानंद–''क्यो, अभी तो दो सौ आदमियो को देख चुके हो।''

महेद्र–''क्या वे सब संतान है?''

भवानंद–''हां सब संतान है।''

महेद्र–''और कितने लोग है?''

भवानंद–''इसी तरह हजारो है। धीरे–धीरे और बढ़ेगे।''

महेद्र–''बहुत होगा, दस–बीस हो जाओगे– लेकिन क्या इतने से ही मुसलमान भाग जाएंगे? क्या वे सहज ही राजच्युत होगे?''

भवानंद–''पलासी में अंगरेजो की फौज कितनी थी?''

महेद्र –''अंगरेज और बंगाली बराबर है?''

भवानंद –''न कैसे बराबर होगे? शरीर मे अधिक बल होने से क्या गोला ज्यादा तेज चलता है?''

महेद्र–''तब अंगरेजो और मुसलमानो मे इतना अंतर क्यो है?''

भवानंद –''मान लो एक अंगरेज प्राण जाने पर भी भागता नही, लेकिन एक मुसलमान पसीना होते ही भागता है, शरबत की खोज करता है। इसके बाद मान लो, अंगरेज जो करना चाहते है, करके छोड़ते है, उनमें लगन होती है, लेकिन मुसलमान आरामतलब होते है, रुपयो के लिए प्राण देते है– उस पर तनखाह भी तो नही पाते। सबसे अंतिम बात यह है कि अंगरेज साहसी होते है। एक गोला एक ही जगह जाकर गिरेगा, दस जगह नही, अत: एक गोले को देखकर दस आदमियो के भागने की क्या जरूरत है? एक गोले के छूटते ही मुसलमान फौज–की–फौज भागती है। लेकिन सैकड़ो गोले देखकर भी एक अंगरेज तो नही भागता।.....''

महेद्र–''तुम लोग मे ये सब गुण है'' भवानंद –''नही, लेकिन गुण पेड़ो मे फलते तो नही, अभ्यास से ही आते है''

महेद्र –''तुम लोग क्या अभ्यास करते हो? ?''

भवानंद –''देखते नही हो, हम लोग सन्यासी है! हमारा सन्यास इसी अभ्यास के लिए है। कार्योद्धार होने पर, अभ्यास पूरा होने पर, हम लोग फिर गृहस्थ हो जाएंगे। हम लोगो के भी स्त्री–कन्या सब है।''

महेद्र –''तुम लोग उन सबको त्यागकर माया–मोह से परे हो सके हो?''

भवानंद –''संतान झूठ नही बोला करते– तुम्हारे सामने मे मिथ्या बड़ाई करना नही चाहता– माया से परे कौन हो सकता है? जो कहे कि हमने माया काट दी है, शायद उसे माया–ममता कभी रही ही नही, या वह मिथ्यावादी है। हम माया से परे नही हुए है, लेकिन हम लोग अपने इस व्रत की रक्षा करते है। तुम संतान बनोगे?''

महेद्र –''बिना अपनी स्त्री–कन्या का पता पाए और मिले, मै कुछ नही कर सकता।''

भवानंद –''चलो, तुम अपनी स्त्री–कन्या को देखोगे? चलो!''

दोनो शांत राह चुपचाप तय करने लगे। भवानंद ने फिर वंदेमातरम् गाना शुरू किया। महेद्र का गला भी सुरीला था, संगीत मे कुछ अभ्यास और रुचि भी थी, अत: वे भी साथ ही गाने लगे। उन्होने देखा कि यह अपूर्व देशगीत गाते–गाते आंखो मे जल आने लगता है। तब महेद्र ने कहा –''यदि स्त्री–कन्या का त्याग न करना पड़े तो इस व्रत मे मुझे भी दीक्षित कर लो!''

भवानंद –''यह व्रत जो लेता है, उसे स्त्री–कन्या का त्याग करना ही पड़ता है। तुम यदि यह व्रत लेना चाहोगे, तो स्त्री–कन्या से मुलाकात करने न पाओगे! उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त प्रबंध कर दिया जाएगा,

लेकिन व्रत की सफलता तक उनका मुखदर्शन नही मिलेगा।''

महेद्र-''तब मै यह व्रत ग्रहण न करूंगा।''

सबेरा हो गया है। वह जनहीन कानन अब तक अंधकारमय और शब्दहीन था। अब आलोकमय प्रात: काल मे आनंदमय कानन के 'आनंद-मठ' सत्यानंद स्वामी मृगचर्म पर बैठे हुए संध्या कर रहे है। पास मे भी जीवानंद बैठे है। ऐसे ही समय महेद्र को साथ में लिए हुए स्वामी भवानंद वहां उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी चुपचाप संध्या मे तल्लीन रहे, किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। इसके बाद संध्या समाप्त हो जाने पर भवानंद और जीवानंद दोनो ने उठकर उनके चरणो मे प्रणाम किया, पदधूलि ग्रहण करने के बाद दोनों बैठ गए। सत्यानंद इसी समय भवानंद को इशारे से बाहर बुला ले गए। हम नही जानते कि उन लोगो मे क्या बाते हुई। कुछ देर बाद उन दोनों के मंदिर मे लौट आने पर मंद-मंद मुसकाते हुए ब्रह्मचारी ने महेद्र से कहा-''बेटा! मै तुम्हारे दु:ख से बहुत दु:खी हूं। केवल उन्हीं दीनबंधु प्रभु की ही कृपा से कल रात तुम्हारी स्त्री और कन्या को किसी तरह बचा सका।'' यह उन्ही ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का सारा वृत्तांत सुना दिया। इसके बाद उन्होंने कहा-''चलो वे लोग जहां है वही तुम्हे ले चले!''

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे और महेद्र पीछे देवालय के अंदर घुसे। प्रवेश कर महेद्र ने देखा- बड़ा ही लंबा चौड़ा और ऊंचा कमरा है। इस अरुणोदय काल मे जबकि बाहर का जंगल सूर्य के प्रकाश मे हीरों के समान चमक रहा है, उस समय भी इस कमरे मे प्राय: अंधकार है। घर के अंदर क्या है- पहले तो महेद्र यह देख न सके, किंतु कुछ देर बाद देखते-देखते उन्हे दिखाई दिया कि एक विराट चतुर्भुज मूर्ति है, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, कौस्तुभमणि हृदय पर धारण किए, सामने घूमता सुदर्शनचक्र लिए स्थापित है। मधुकैटभ जैसी दो विशाल छिन्नमस्तक मूर्तियां खून से लथपथ सी चित्रित सामने पड़ी है। बाएं लक्ष्मी आलुलायित-कुंतला शतदल-मालामण्डिता, भयत्रस्त की तरह खड़ी है। दाहिने सरस्वती पुस्तक, वीणा और मूर्तिमयी राग-रागिनी आदि से घिरी हुई स्तवन कर रही है। विष्णु की गोद मे एक मोहिनी मूर्ति-लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुंदरी, उनसे भी अधिक ऐश्वर्यमयी- अंकित है। गंधर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षसगण उनकी पूजा कर रहे है। ब्रह्मचारी ने अतीव गंभीर, अतीव मधुर स्वर मे महेद्र से पूछा-''सब कुछ देख रहे हो?''

महेद्र ने उत्तर दिया-''देख रहा हूं''

ब्रह्मचारी-''विष्णु की गोद मे कौन है, देखते हो?''

महेद्र-''देखा, कौन है वह?''

ब्रह्मचारी -''मां!''

महेद्र -''यह मां कौन है?''

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया -''हम जिनकी संतान है। ''

महेद्र -''कौन है वह?''

ब्रह्मचारी -''समय पर पहचान जाओगे। बोलो, वंदे मातरम्! अब चलो, आगे चलो!''

ब्रह्मचारी अब महेद्र को एक दूसरे कमरे मे ले गए। वहां जाकर महेंद्र ने देखा- एक अद्‌भुत शोभा-संपन्न, सर्वाभरणभूषित जगद्धात्री की मूर्ति विराजमान है। महेद्र ने पूछा-''यह कौन है?''

ब्रह्मचारी-''मां, जो वहां थी।''

महेद्र-''यह कौन है?''

ब्रह्मचारी -''इन्होने यह हाथी, सिंह आदि वन्य पशुओ को पैरो से रौदकर उनके आवास-स्थान पर अपना

पद्मासन स्थापित किया। ये सर्वालंकार-परिभूषिता हास्यमयी सुंदरी है- यही बालसूर्य के स्वर्णिम आलोक आदि ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री है- इन्हे प्रणाम करो!''

महेद्र ने भक्तिभाव से जगद्धात्री-रुपिणी मातृभूमि-भारतमाता को प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारी ने उन्हे एक अंधेरी सुरंग दिखाकर कहा-''इस राह से आओ!'' ब्रह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले। महेद्र भयभीत चित्त से पीछे-पीछे चल रहे थे। भूगर्भ की अंधेरी कोठरी मे न जाने कहां से हलका उजाला आ रहा था। उस क्षीण आलोक मे उन्हे एक काली मूर्ति दिखाई दी।

ब्रह्मचारी ने कहा-''देखो अब मां का कैसा स्वरूप है!''

महेद्र ने कहा-''काली?''

ब्रह्मचारी-''हां मां काली- अंधकार से घिरी हुई कालिमामयी समय हरनेवाली है इसीलिए नग्न है। आज देश चारो तरफ श्मशान हो रहा है, इसलिए मां कंकालमालिनी है- अपने 'शिव' को अपने ही पैरो तले रौंद रही है। हाय मा! ब्रह्मचारी की आंखे से आंसू की धारा-बहने लगी।''

ब्रह्मचारी -''हमलोग संतान है। अपनी मां के हाथो मे अभी केवल अस्त्र रख दिए है। बोलो- वन्देमातरम् !''

'वन्देमातरम्- कहकर महेद्र ने मां काली को प्रणाम किया।'

अब ब्रह्मचारी ने कहा-''इस राह से आओ!'' यह कहकर वे दूसरी सुरंग मे चले। सहसा उन लोगो के सामने प्रात: सूर्य की किरणे चमक उठी, चारो तरफ मधुर से पक्षी कूंज उठे। सामने देखा, एक संगमर्मर से निर्मित विशाल मंदिर के बीच सुवर्ण-निर्मित दशभुज-प्रतिमा नव-अरूण की किरणा से ज्योतिर्मयी होकर हंस रही हैं। ब्रह्मचारी ने प्रणाम कर कहा-''ये है मां, जो भविष्यत मे उनका रूप होगा। इनके दशभुज दशो दिशाओ मे प्रसारित है, उनमे नाना आयुधरूप मे नाना शक्त्यिां शोभित हैं। पैरो के नीचे शत्रु दबे हुए है, पैरो के निकट वीर-केशरी भी शत्रु-निपीड़न से मग्न है।'' दिक्भुजा-''कहते-कहते सत्यानंद गद्गद् हो रोने लगे- ''दिक्भुजा- नानाप्रहरणधारिणी, शत्रुविमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी, दाहिने लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बाएं वाणी विद्याविज्ञानदायिनी- साथ मे शक्ति के आधार कार्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश- आओ, हम दोनो मां को प्रणाम करे!'' इस पर दोनो ही हाथ जोड़कर माता का रूप निहारते हुए प्रार्थना करने लगे-

''सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुते॥''

दोनो के भक्ति-भाव से प्रणाम कर चुकने के बाद, भरे हुए गले से महेद्र ने पूछा-'' मा की ऐसी मूर्ति कब देखने को मिलेगी?''

ब्रह्मचारी ने कहा -''जिस दिन मां की सारी सन्ताने एक साथ मां को बुलाएंगी, उसी दिन मां प्रसन्न होगी।''

एकाएक महेद्र ने पूछा -''मेरी स्त्री-कन्या कहां है?''

ब्रह्मचारी-''चलो, देखोगे? चलो!''

महेद्र -''उन लोगो से भी एक बार मै मिलूंगा, इसके बाद उन्हे बिदा कर दूंगा।''........

ब्रह्मचारी-''क्यो बिदा करोगे?''

महेद्र -''मै भी यह महामंत्र ग्रहण करूंगा!''

ब्रह्मचारी -''उन्हे कहां विदा करोगे?''

महेद्र ने विचारकर कहा-''मेरे धर पर कोई नही है, मेरा दूसरा कोई स्थान भी नही है। इस महामारी के समय

और कहां स्थान मिलेगा।''

ब्रह्मचारी-''जिस राह से यहां आये हो, उसी राह से मंदिर से बाहर जाओ! मंदिर के दरवाजे पर तुम्हे स्त्री-कन्या दिखाई देगी। कल्याणी अभी तक निराहार है। जहां वे दोनों बैठी है वही भोजन की सामग्री पाओगे। उसे भोजन कराके तुम्हारी जो इच्छा हो करना। अब हम लोगो में से किसी से कुछ देर मुलाकात न होगी। यदि तुम्हारा मन इधर होगा तो समय पर मै तुमसे मिलूंगा।''

इसके बाद ही किसी तरह से एकाएक ब्रह्मचारी अंतर्हित हो गए। महेद्र ने पूर्व-परिचित राह से लौटकर देखा- नाट्य मंदिर मे कल्याणी कन्या को लिए हुए बैठी है।

इधर सत्यानंद एक दूसरी सुरंग मे जाकर एक अकेली भूगर्भस्थित कोठरी मे उतर पड़े। वहां जीवानन्द और भुवानंद बैठे हुए रुपये गिन-गिनकर रख रहे थे। उस कमरे मे ढेरो सोना, चांदी, तांबा, हीरे, मोती, मूंगे रखे हुए थे। गत रात खजाने की लूट का माल ये लोग गिन-गिनकर रख रहे थे।

सत्यानंद ने कमरे मे प्रवेश कर कहा-''जीवानंद! महेद्र हमारे साथ आएगा। उसके आने से संतानो का विशेष कल्याण होगा। कारण आने से उसके पूर्वजो का संचित धन मां की सेवा मे अर्पित होगा। लेकिन जब तक वह तन-मन-वचन से मातृभक्त न हो, तब तक उसे ग्रहण न करना। तुम लोगो के हाथ का काम समाप्त होने पर तुम लोग भिन्न-भिन्न समय मे उसका अनुसरण करना, उचित समय पर उसे श्रीविष्णुमंडप मे उपस्थित करना, और समय हो या कुसमय हो, उन लोगो की रक्षा अवश्य करना। कारण, जैसे दुष्टो का दमन और दलन संतानो का धर्म है, वैसे ही शिष्टो की रक्षा करना भी संतानो का धर्म है!''

अनेक दु:खों के बाद महेद्र और कल्याणी मे मुलाकात हुई। कल्याणी रोकर पछाड़ खा गिरी। महेद्र और भी रोए। रोने-गाने के बाद आंखो के पोछने की धूम मच गई। जितने बार आंखे पोंछी जाती थी, उतनीही बार आंसू आ जाते थे। आंसू बंद करने के लिए कल्याणी ने भोजन की बात उठाई। ब्रह्मचारीजी के अनुचर जो खाना रख गए थे, कल्याणी ने उसे खाने के लिए महेद्र से कहा। दुर्भिक्ष के दिनो मे इधर अन्न भोजन की कोई संभावना नही थी, फिर भी आसपास जो कुछ है, संतानो के लिए वह सुलभ है। वह जंगल साधारण मनुष्यो के लिए अगम्य है जहां जिस वृक्ष मे जो फल होते है, उन्हे भूखे लोग तोड़कर खाते है, किंतु इस अगम्य वन के वृक्षो का फल कोई नही पाता इसलिए ब्रह्मचारी के अनुचर ढेरो फल और दूध लाकर रख जाने में समर्थ हुए। संन्यासीजी की सम्पत्ति मे अनेक गौएं भी है। कल्याणी के अनुरोध पर महेद्र ने पहले कुछ भोजन किया, इसके बाद बचा हुआ भोजन अकेले मे बैठकर कल्याणी ने खाया। उन लोगों ने थोड़ा दूध कन्या को पिलाया, बाकी बचा हुआ रख लिया- फिर पिलाने की आशा ही तो माता-पिता का संतान के प्रति धर्म है। इसके बाद थकावट और भोजन के कारण दोनों ने निंद्राभिभूत होकर आराम किया।

नीद से उठने के बाद दोनो विचार करने लगे-''अब कहां चलना चाहिए?'' कल्याणी ने कहा-''घर पर विपद की संभावना समझकर हमने गृहत्याग किया था, लेकिन अब देखती हूं कि घर से भी अधिक कष्ट बाहर है। न हो तो चलो, घर ही लौट चले!'' महेद्र की भी यही इच्छा थी। महेद्र की इच्छा है कि कल्याणी को घर पर बैठाकर, कोई एक विश्वासी अभिभावक नियुक्त कर, इस परमरमणीय, अपार्थिव पवित्र मातृसेवा-व्रत को ग्रहण करेगे। अत: इस बात पर वे सहज ही सहमत हो गए। अब दोनो ही प्राणियो ने थकावट दूर होने पर कन्या को गोद मे लेकर फिर पदचिन्ह की तरफ यात्रा की।

किंतु पदचिन्ह जाने के लिए किस राह से जाना होगा- उस दुर्भेद्य वन मे वे कुछ भी समझ न सके। उन्होने समझा था कि जंगल पार होते ही हमे राह मिल जाएगी और पदचिन्ह पहुंच सकेगे। लेकिन वहां तो बन का ही थाह नही लगता है। बहुत देर तक वे लोग वन के अंदर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे और बार-बार घूम-फिरकर

वे लोग मठ मे ही पहुंच जाते थे। उन्हे जंगल से पार होनेवाली राह मिलती ही न थी। यह देखते हुए सामने एक वैष्णव वेशधारी खड़े हंस रहे थे। यह देखकर महेद्र ने रुष्ट होकर उनसे कहा–''गोस्वामी! खड़े–खड़े हंसते क्यो हो?''

गोस्वामी बोले–''तुमलोग इस वन मे आए कैसे?''

महेद्र बोले–''जैसे भी हो आ ही गए है!''

गोस्वामी–''प्रवेश कर सके तो बाहर क्यो नही निकल पाते हो?'' यह करकर वैष्णव फिर हंसने लगे।

महेद्र ने वैसे ही रुष्ट स्वर में कहा–''हंसते तो हो, लेकिन क्या तुम इसके बाहर निकल सकते हो?''

वैष्णव ने कहा–''मेरे साथ आओ, मै राह बता देता हूं। अवश्य ही तुम लोग ब्रह्मचारीजी के संग आए होगे, अन्यथा न तो कोई यहां आ सकता है, न निकल ही सकता है। अपरिचितो के लिए यह भूल–भुलैया है।''

यह सुनकर महेद्र ने कहा–''आप भी सन्तान है?''

वैष्णव ने कहा–''हां, मै भी सन्तान हूं। मेरे साथ आओ। तुम्हे राह दिखाने के लिए ही मै यहां खड़ा हूं।''

महेद्र ने पूछा –''आपका नाम क्या है?''

वैष्णव ने उत्तर दिया–''मेरा नाम धीरानंद स्वामी है।''

यह कहकर धीरानंद आगे–आगे चले और कल्याणी के साथ महेद्र पीछे–पीछे। धीरानंद ने एक बड़ी सी दुर्गम राह से उन्हे जंगल के बाहर कर दिया और आगे की राह बता दी। इसके बाद वे फिर जंगल मे पलटकर गायब हो गए।

आनंद–वन से बाहर निकल आने पर कुछ दूर तक राह चलने मे तो जंगल उनके एक बाजू रहा। जंगल की बगल से ही शायद वह राह गई है। एक जगह जंगल मे से ही एक छोटी नदी कलकल कर बहती है। जल बहुत ही साफ है, लेकिन देखने पर जंगल की छाया से जल भी काला दिखाई देता है। नदी के दोनो बाजू सघन बड़े–बड़े वृक्ष मनोरम छाया किए हुए है, विभिन्न पक्षी उन पेड़ो पर बैठे कलरव कर रहे है। उनका कलरव–कूजन, नदी की कलकल–ध्वनि से मिलकर अपूर्व श्रुतिमधुर जान पड़ता है। वैसे ही वृक्ष के रंग से नदी–जल का रंग भी वैसा ही झलक रहा है। कल्याणी का मन भी शायद उस रंग मे मिल गया। कल्याणी नदी तट के एक वृक्ष से लगकर बैठ गई। उन्होने अपने पति को भी बैठने को कहा। कल्याणी अपने पति के हाथो को अपने हाथो मे लिए बैठी रही। फिर बोली–''तुम्हे आज बहुत उदास देखती हूं। विपद जो आयी थी, उससे तो उद्धार मिल गया है, अब इतना दु:ख क्यो?''

महेद्र ने एक ठंढी सांस लेकर कहा–''मै अब अपने आपे मे नही हूं। मै क्या करूं– कुछ समझ मे नही आता।''.....

कल्याणी–''क्यो?''

महेद्र–''तुम्हारे खो जाने पर मेरा क्या हाल हुआ, सुनो!''......

यह कहकर महेद्र ने अपनी सारी कहानी सविस्तार वर्णन कर दी।

कल्याणी ने कहा–''मुझे भी बड़ी विपदो का सामना करना पड़ा, बहुत तकलीफ उठाई। तुम उन्हे सुनकर क्या करोगे! इतने दु:खो पर भी मुझे कैसे नीद आई थी, कह नही सकती– कल आखिर रात भी मै सोई थी। नीद मे मैने स्वप्न देखा। देखा– नही कह सकती, किस पुण्यबल से मै एक अपूर्व स्थान मे पहुंच गई हूं। वहां मिट्टी नही है, केवल प्रकाश– अति शीतल– बादल हट जाने पर जैसा प्रकाश रहता है, वैसा ही प्रकाश! वहां मनुष्य नही थे, केवल प्रकाशमय मूर्तियां थी, वहां शब्द नही होता था, केवल दूर अपूर्व संगीत जैसी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। सदाबहार मल्लिका–मालती–गंधराज की अपूर्व सुगंध फैली थी। वहां सबसे ऊंचे दर्शनीय

स्थान पर कोई बैठा था, मानो आग मे तपा हुआ नील-कमल धधकता हुआ बैठा हो। उसके माथे पर सूर्य के प्रकाश जैसा मुकुट था; उसके चार हाथ थे। उसके दोनो बाजू कौन था, मै पहचान न सकी, लेकिन कोई स्त्री-मूर्ति थी। लेकिन उनमे इतनी ज्योति, इतना रूप, इतना सौरभ था कि मै उधर देखते ही विह्वल हो गई- उधर ताक न सकी, देख न सकी कि वे कौन है? उन्ही चतुर्भुज के सामने एक स्त्री और खड़ी थी- वह भी ज्योतिर्मयी थी, लेकिन चारो तरफ मेघ जैसा छाया था, आभा पूरी तरह दिखाई नही देती थी। अस्पष्ट रूप मे जान पड़ता था कि वह नारीमूर्ति अति दुर्बल, मर्मपीड़ित, अनन्य-सुंदरी, लेकिन रो रही है। वहां के मंद-सुगंध पवन ने मानो मुझे घुमाते-फिराते वहां चतुर्भुज मूर्ति के सामने ला खड़ा किया। उस मेधमंडिता दुर्बल स्त्री ने मुझे देखकर कहा- यही है, इसी के कारण महेद्र मेरी गोद मे आता नही है।''........

इसके बाद ही एक अपूर्व वंशी जैसी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। वह शब्द उन चतुर्भुज का था, उन्होने मुझे कहा-''तुम अपने पति को छोड़कर मेरे पास चली आओ! यह तुम लोगो की मां है महेद्र इसकी सेवा करेगा। तुम यदि पति के पास रहोगी तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा। तुम चली जाओ।'' मैने रोकर कहा-''पति को छोड़कर मै कैसे चली आऊं?'' इसके बाद ही फिर उसी अपूर्व स्वर में उन्होने कहा-''मै ही स्वामी, मै ही पुत्र, मै ही माता, मै ही पिता और मै ही कन्या हूं, मेरे पास आओ!'' ''मैने क्या उत्तर दिया, मुझे याद नही, लेकिन इसके बाद ही नीद खुल गई।'' यह कहकर कल्याणी चुप हो रही।

महेद्र विस्मित, स्तम्भित होकर चुप हो रहे। ऊपर पेड़ पर कोई पक्षी बोल उठा, पपीहा अपनी बोली से आकाश गुंजाने लगा, कोकिल सप्त-स्वरो मे गाने लगी, भृंगराज की झनकार से जंगल गूंज उठा। पैरो के नीचे तरिणी मृदु कल्लोल कर रही थी। बहुतेरे वन्य पुष्पो के सौरभ से मन हरा हो रहा था। कही-कही नदी-जल को सूर्य-रश्मि चमका रही थी। कही ताड़ के पत्ते हवा के झोके से मरमरा रहे थे। दूर नीली पर्वत-श्रेणी दिखाई पड़ रही थी। दोनो ही जन मुग्ध-नीरव हो यह सब देखते रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा-''क्या सोच रहे हो?''

महेद्र-''यही सोचता हूं कि क्या करना चाहिए? यह स्वप्न केवल विभीषिका मात्र है, अपने ही हृदय मे पैदा होकर अपने ही मे लीन हो जाता है। चलो, घर चले!''

कल्याणी-''जहां ईश्वर तुम्हे जाने को कहते है, तुम वही जाओ!''

यह कहकर कल्याणी ने कन्या अपने पति की गोद मे दे दी। महेद्र ने उसे अपने गोद मे लेकर पूछा-''और तुम......तुम कहां जाओगी?''

कल्याणी अपने दोनो हाथो से दोनो आंखो को ढंके हुए, साथ ही मस्तक पकड़े हुए बोली-''मुझे भी भगवान ने जहां जाने को कहा है वही जाऊंगी।''

महेद्र चौंक उठे। बोले-''वहां कहां? कैसे जाओगी?''

कल्याणी ने अपने पास की वही जहर की डिबिया दिखाई।

महेद्र ने डरते हुए भौचक्का होकर कहा-''यह क्या? जहर खाओगी?''

कल्याणी-''मन मे तो सोचा था, खाऊंगी, लेकिन......''

कल्याणी चुप होकर विचार मे पड़ गई, महेद्र उसका मुं ह ताकते रहे- प्रति निमेश वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। उन्होने देखा कि कल्याणी ने बात पूरी न कही, अत: बोले-''लेकिन के बाद आगे क्या कह रही थी?''

कल्याणी-''मन मे था कि खाऊंगी, लेकिन तुम्हे छोड़कर, सुकुमारी कन्या को छोड़कर बैकुंठ जाने की भी मेरी इच्छा नही होती। मै न मरूंगी!''

यह कहकर कल्याणी ने विष की डिबिया जमीन पर रख दी। इसके बाद दोनो ही पी-पुरुष भूत-भविष्य की

अनेक बाते करने लगे। बातें करते हुए दोनो ही अन्यमनस्क हो उठे। इसी समय खेलते-खेलते सुकुमारी कन्या ने विष की डिबिया उठा ली। उसे किसी ने न देखा।

सुकुमारी ने मन में सोचा कि बढ़िया खेलने की चीज है। उसने इस डिबिया को एक बार बाएं हाथ मे लेकर दाहिने हाथ से खीचा। इसके बाद दाहिने हाथ से पकड़कर बाएं हाथ से खीचा। इसके बाद दोनो हाथो से उसे खीचना शुरू किया। फल यह हुआ कि डिबिया खुल गई, उसमे से जहर की टिकिया बाहर गिर पड़ी।

बाप के कपड़े के ऊपर वह टिकिया गिरी- सुकुमारी ने उसे देखा, मन मे सोचा, कि यह एक दूसरी खेलने की चीज है डिबिया के दोनो ढक्कन उसने छोड़ दिए और उस टिकिया को उठा लिया।

डिबिया को सुकुमारी ने मुंह मे क्यो नही डाला, नही कहा जा सकता। लेकिन टिकिया मे उसने जरा भी विलम्ब न किया? ''प्रप्तिमात्रेण भोक्तव्य''-- सुकुमारी ने उस जहर की टिकिया को मुंह मे डाल लिया।

''क्या खाया? अरे क्या खाया? गजब हो गया!''.....

झ्द्धयह कहती हुई कल्याणी ने कन्या के मुंह मे उंगली डाल दी। उसी समय दोनो ने देखा कि विष की डिबिया खाली पड़ी हुई है। सुकुमारी ने सोचा कि यह भी खेल की चीज है, अत: उसने उसे दांतो से दबा लिया और माता का मुंह देखकर मुस्कराने लगी। लेकिन जान पड़ता है, इसी समय जहर का कड़वा स्वाद उसे मालूम पड़ा और उसने मुंह बिगाड़कर खोल दिया- वह टिकिया दांतो मे चिपकी हुई थी। माता ने तुरंत निकाल कर उसे जमीन पर फेक दिया। लड़की रोने लगी।

टिकिया उसी तरह पड़ी रही। कल्याणी तुरंत नदी-तट पर जाकर अपना आंचल भिगो लाई और लड़की के मुंह मे जल देकर उसने धुलवा दिया। बड़ी ही कातर वाणी से कल्याणी ने महेद्र से पूछा-''क्या कुछ पेट मे गया होगा?''

बुरी बात ही मां-बाप के मुंह से पहले निकलती है- जहां अधिक प्रेम होता है, वहां भय भी बहुत अधिक होता है। महेद्र ने यह कभी देखा न था कि टिकिया पहले कितनी बड़ी थी। अब उन्होने टिकिया अपने हाथ मे उठाकर मजे मे उसे देखकर कहा-''मालूम तो होता है कि कुछ खा गई है।''

कल्याणी को कुछ ऐसा ही विश्वास हुआ। टिकिया हाथ मे लेकर बहुत देर तक वह भी उसकी जांच करती रही। इधर कन्या ने दो-एक घूंट रस जो चूस लिया था, उससे उसकी दशा बिगड़ने लगी- वह छटपटाने लगी, रोने लगी, अंत मे कुछ बेहोश सी हो पड़ी। तब कल्याणी ने पति से कहा-''अब क्या देखते हो? जिस राह पर भगवान ने बुलाया है, उसी राह पर सुकुमारी चली, मुझे भी वही राह लेनी पड़ेगी।''

यह कहकर कल्याणी ने उस टिकिया को उठाकर मुंह मे डाल लिया और एक क्षण मे निगल गई।

महेद्र रोने लगे-''क्या किया, कल्याणी! अरे तुमने यह क्या किया है?''........

कल्याणी ने कोई उत्तर न देकर पति के पैरो की धूलि माथे लगाई, फिर बोली-''प्रभु! बात बढ़ाने से बात बढ़ेगी......मै चली।''

''कल्याणी! यह क्या किया?''- कहकर महेद्र चिल्लाकर रोने लगे।

बड़े ही धीमे स्वर मे कल्याणी बोली-''मैने अच्छा ही किया है, इस नाचीज औरत के पीछे तुम अपनी मातृभूमि की सेवा से वंचित रहते। देखो मै देववाक्य का उल्लंघन कर रही थी, इसलिए मेरी कन्या गई। थोड़ी और अवहेलना करने से तुम पर विपत्ति आती।''

महेद्र ने रोते हुए कहा-''अरे, तुम्हे कही बैठाकर मै चला जाता, कल्याणी!- कार्य सिद्ध हो जाने पर फिर हम लोग मिलकर सुखी होते। कल्याणी! मेरी सर्वस्व! तुमने यह क्या!! जिस भुजा के बल पर मै तलवार पकड़ता, हाय! तुमने वही भुजा काट दी। तुम्हे खोकर मै क्या रह पाऊंगा।''.......

कल्याणी–''कहां मुझे ले जाते?– कहां स्थान है? मां–बाप, सगे–संबंधी सब इस दुर्दिन मे चले गए है। किसके घर मे जगह है, कहां जाने का विचार है? कहां ले जाओगे? मै कालग्रह हूं– मैने मरकर अच्छा ही किया है! मुझे आशीर्वाद दो, मै उस आलोकमय लोक मे जाकर तुम्हारी प्रतीक्षा मे रहूं और फिर तुम्हे पाउं।''

यह कहकर कल्याणी ने फिर स्वामी का पदरेणु ग्रहण किया। महेद्र कोई उत्तर न देकर रोते ही रहे। कल्याणी फिर अति मृदु, अति मधुर, अतीव स्नेहमय कंठ से बोली–''देखो, देवताओं की इच्छा, किसकी मजाल है कि उसका उल्लंघन कर सके! मुझे जाने की आज्ञा उन्होने दी है, तो क्या मैं किसी तरह भी रुक सकती हूं? मै स्वयं न मरती तो कोई मार डालता! मैने आत्महत्या कर अच्छा ही किया है। तुमने देशोद्धार का जो व्रत लिया है, उसे तन–मन–धन से पूरा करो– इसी मे तुम्हे पुण्य होगा– इसी पुण्य से मुझे भी स्वर्गलाभ होगा। हम दोनो ही साथ–साथ अक्षय स्वर्गमुख का उपभोग करेगे।''

इधर बालिका एक बार दूध की उल्टी कर सम्भलने लगी। उसके पेट मे जिस परिमाण मे विष गया था, वह घातक नही था। लेकिन महेद्र का ध्यान उस समय उधर न था। उन्होने कन्या को कल्याणी की गोद मे दे दोनो का प्रगाढ़ अलिंगन कर फूट–फूटकर रोना शुरू किया। उसी समय वन मे से मधुर किंतु मेघ–गंभीर शब्द सुनाई पड़ने लगा–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरे!''

उस समय कल्याणी पर विष का प्रभाव हो रहा था, चेतना कुछ लुप्त हो चली थी। उन्होने अवचेतन मन से सुरा, मानो वैकुण्ठ से यह अपूर्व ध्वनि उभरकर गूंज रही है–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरे!''

तब कल्याणी ने अप्सरानिंदित कंठ से बड़े ही मोहक स्वर मे गाया–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''

वह महेंद्र से बोली– ''कहो हरे मुरारे मधुकैटभारे!''

वन मे गूंजने वाले मधुर स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर पर विमुग्ध होकर कातर हृदय से एक मात्र ईश्वर को ही सहाय समझाकर महेद्र ने भी पुकारा–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''.........

तब मानो चारो तरफ से ध्वनि होने लगी––

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

और मानो वृक्ष के पत्तो से भी आवाज निकलने लगी–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

नदी के कलकल ध्वनि मे भी वही शब्द हुआ–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

अब महेद्र अपना शोक संताप भूल गए, उन्मत्त होकर वे कल्याणी के साथ एक स्वर से गाने लगे–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

जंगल मे से भी उसके स्वर से मिली हुई वाणी निकली–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

कल्याणी का कंठ क्रमशः क्षीण होने लगा, फिर भी वह पुकार रही थी–

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

इसके बाद ही उसका कंठ क्रमशः निस्तब्ध होने लगा, कल्याणी के मुंह से अब शब्द नही निकलता- आंखें ढंक गई, अंग शीतल हो गए। महेद्र समझ गए कि कल्याणी ने ''हरे मुरारे'' कहते हुए बैकुंठ प्रयाण किया। इसके बाद ही पागलों की तरह उच्च स्वर से वन को कम्पित करते हुए पशु-पक्षियों को चौकाते हुए महेंद्र पुकारने लगे-

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

इसी समय किसी ने आकर उनका अलिंगन किया और उसी स्वर मे वह भी कहने लगा-

''हरे मुरारे मधुकैटभारे!''........

तब उस अनंत ईश्वर की महिमा से, उस अनंत वन में अनंत पथगामी शरीर के सामने दोनो जन अनंत नाम-स्मरण करने लगे। पशु-पक्षी नीरव थे, पृथ्वी अपूर्व शोभामयी थी- इस परम पावन गीत के उपयुक्त मंदिर था वह। सत्यानंद महेद्र को बांहो मे संभाल कर बैठ गए।

इधर राजधानी की शाही राहो पर बड़ी हलचल उपस्थित हो गई। शोर मचने लगा कि नवाब के यहां से जो खजाना कलकत्ते आ रहा था, संन्यासियों ने मानकर सब छीन लिया। राजाज्ञा से सिपाही और बल्लमटेर संन्यासियो को पकड़ने के लिए छूटे। उस समय दुर्भिज्ञ-पीड़ित प्रदेश मे वास्तविक संन्यासी रह ही न गए थे। कारण, वे लोग भिक्षाजीवी ठहरे, जनता स्वयं खाने को नही पाती तो उन्हे वह कैसे दे सकती है? अतएव जो असली संन्यासी भिक्षुक थे, वे लोग पेट की ज्वाला से व्याकुल होकर काशी-प्रयाग चले गए थे। आज ये हलचल देखकर कितनो ने ही अपना संन्यासी वेष त्याग दिया। राज्य के भूखे सैनिक, संन्यासियो को न पाकर घर-घरमे तलाशी लेकर खाने और पेट भरने लगे। केवल सत्यानन्द ने किसी तरह भी अपने गैरिक वस्त्रो का परित्याग न किया।

उसी कल्लोलवाहिनी नदी-तट पर, शाही राह के बगल मे पही पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई है। महेद्र और सत्यानंद परस्पर अलिंगनबद्ध होकर आंसू बहाते हुए भगवन्नाम-उच्चारण मे लगे हुए है। उसी समय एक जमादार सिपाहियो का दल लिए हुए वहां पहुंच गया। संन्यासी के गले पर एक बारगी हाथ ले जाकर जमादार बोला-''यह साला संन्यासी है!''

इसी तरह एक दूसरे ने महेद्र को पकड़ा। कारण, जो संन्यासी का साथी है वह अवश्य संन्यासी होगा। तीसरा एक सैनिक घास पर पड़े हुए कल्याणी के शरीर की तरफ लपका- उसने देखा की औरत मरी हुई है, संन्यासी न होने पर भी हो सकती है। उसने उसे छोड़ दिया। बालिका को भी यही सोच कर उसने छोड़ दिया। इसके बाद उन सबने और कुछ न कहा, तुरंत बांध लिया और ले चले दोनो जन को। कल्याणी की मृत देह और कन्या बिना रक्षक के पेड़ के नीचे पड़ी रही। पहले तो शोक से अभिभूत और ईश्वर के प्रेम मे उन्मत्त हुए महेद्र प्रायः विचेतन अवस्था मे थे- क्या हो रहा था, क्या हुआ- इसे वह कुछ समझ न सके। बंधन मे भी उन्होने कोई आपत्ति न की। लेकिन दो-चार कदम अग्रसर होते ही वे समझ गए कि ये सब मुझे बांध लिए जा रहे है- कल्याणी का शरीर पड़ा हुआ है, उसका अंतिम संस्कार नही हुआ- कन्या भी पड़ी हुई है। इस अवस्था मे उन्हे हिंस्र पशु खा जा सकते है। मन मे यह भाव आते ही महेद्र के शरीर मे बल आ गया और उन्होने कलाइयो को मरोड़कर बंधन को तोड़ डाला। फिर पास मे चलते जमादार को इस जोर की लात लगायी कि वह लुड़कता हुआ दस हाथ दूर चला गया। तब उन्होने पास के एक सिपाही को उठाकर फेका। लेकिन इसी समय पीछे के तीन सिपाहियो ने उन्हे पकड़कर फिर विवश कर दिया। इस पर दुःख से कातर होकर महेद्र ने संन्यासी से

कहा–''आप जरा भी मेरी सहायता करते, तो मै इन पांचो दुष्टो को यमद्वार भेज देता।''

सत्यानंद ने कहा–''मेरे इस बूढ़े शरीर मे बल ही कहां है? मै तो जिन्हे बुला रहा हूं, उनके सिवा मेरा कोई सहारा नही है। जो होना है– वह होकर रहेगा, तुम विरोध न करो। हम इन पांचो को पराजित कर न सकेगे। देखे, ये हमें कहां ले जाते है......... भगवान् हर जगह रक्षा करेगे।''

इसके बाद इन लोगो ने मुक्ति की फिर कोई चेष्टा न की, चुपचाप सिपाहियो के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर सत्यानंद ने सिपाहियो से पूछा–''बाबा! मै तो हरिनाम कह रहा था, क्या भगवान का नाम लेने मे भी कोई बाधा है?'' जमादार समझ गया कि सत्यानंद भले आदमी है। उसने कहा–''तुम भगवान का नाम लो, तुम्हे रोकूंगा नही। तुम वृद्ध ब्रह्मचारी हो, शायद तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो जाएगा। मगर यह बदमाश फांसी पर चढ़ेगा।''

इसके बाद ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे–

''धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।

मा कुरु धनुर्धर गमन विलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी॥.........''

इत्यादि।

नगर मे पहुंचने पर वे लोग कोतवाल के समीप उपस्थित किए गए। कोतवाल ने नवाब के पास इत्तिला भेजकर संप्रति उन्हे फाटक के पास की हवालात मे रखा। वह कारागार अति भयानक था, जो उसमे जाता था, प्राय: बाहर नही निकलता था, क्योकि कोई विचार करने वाला ही न था। वह अंग्रेजो के जेलखाना नही था और न उस समय अंग्रेजो के हाथ मे न्याय था। आज कानूनो का युग है– उस समय अनियम के दिन थे। कानून के युग से जरा तुलना तो करो!

रात हो गई। कारागार मे कैद सत्यानंद ने महेद्र से कहा–''आज बड़े आनंद का दिन है। कारण, हम लोग कारागार मे कैद है। कहो–''हरे मुरारे!''

महेद्र ने बड़े कातर स्वर मे कहा–''हरे मुरारे!''

सत्यानंद–''कातर क्यो होते हो, बेटे! तुम्हारे इस महाव्रत को ग्रहण करने पर तुम्हे स्त्री-कन्या का त्याग तो करना ही पड़ता, फिर तो कोई संबंध रह न जाता।.........''

महेद्र–''त्याग एक बात है, यमदण्ड दूसरी बात! जिस शक्ति के सहारे मै यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ ही चली गई।''

सत्यानंद–''शक्ति आएगी– मै शक्ति हूं! महामंत्र से दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो।'' महेद्र ने विरक्त होकर कहा–''मेरी स्त्री और कन्या को स्यार और कुत्ते खाते होगे– मुझसे किसी व्रत की बात न कहिए!''

सत्यानंद–''इस बारे मे चिंता मत करो! संतानो ने तुम्हारी स्त्री की अन्त्येष्टि क्रिया करके तुम्हारी लड़की को उपयुक्त स्थल मे रख छोड़ा है।''

महेद्र विस्मित हुए, उन्हे इस बात पर जरा भी विश्वास न हुआ। उन्होने पूछा–''आपने कैसे जाना? आप तो बराबर मेरे साथ है।''

सत्यानंद–''हम महामंत्र से दीक्षित है– देवता हमारे प्रति दया करते है। आज रात को तुम यह संवाद सुनोगे और आज ही तुम कैदखाने से छूट भी जाओगे।''

महेद्र कुछ न बोला। सत्यानंद ने समझ लिया कि महेंद्र को मेरी बातो का विश्वास नही होता। तब सत्यानंद बोले–''तुम्हे विश्वास नही होता? परीक्षा करके देखो!'' यह कहकर सत्यानंद कारागार के द्वार तक आए। क्या

किया, यह महेद्र को कुछ मालूम न हुआ, पर यह जान गए कि उन्होने किसी से बातचीत की है। उनके लौट आने पर महेद्र ने पूछा–''क्या परीक्षा करूं?''

सत्यानंद–''तुम अभी कारागार से मुक्ति-लाभ करोगे?''

उसके यह बात कहते–कहते कारागार का दरवाजा खुल गया। एक व्यक्ति ने घर के भीतर आकर कहा–''महेद्र किसका नाम है?''

महेद्र ने उत्तर दिया–''मेरा नाम है।''

आगंतुक ने कहा–''तुम्हारी रिहाई का हुक्म हुआ है, तुम जा सकते हो।''

महेद्र पहले तो आश्चर्य मे आए। फिर सोचा, झूठी बात है। अत: परीक्षार्थ वे बाहर आए। किसी ने उनकी राह न रोकी। महेद्र शाही सड़क तक चले गए।

इस अवसर पर आगन्तुक ने सत्यानंद से कहा–''महाराज! आप क्यो नही जाते? मै आपके लिए ही आया हूं।''

सत्यानंद–''तुम कौन हो? गोस्वामी धीरानंद?''

धीरानंद –''जी हां!''

सत्यानंद–''प्रहरी कैसे बने?''

धीरानंद–''भवानन्द ने मुझे भेजा है। मै नगर मे आने के बाद और यह सुनकर कि आप इस कारागार मे है, अपने साथ धतूरा मिली थोड़ी विजया ले आया था। यहां पहरे पर जो खां साहब थे, वह उसके नशे में जमीन पर पड़े सो रहे है। यह जमा–जोड़ा, पकड़ी, भाला जो कुछ मैने पाया है, यह सब उन्हीं का है।''

सत्यानंद–''तुम यह सब पहले हुए नगर के बार चले आओ। मै इस तरह न आऊंगा।''

धीरानंद–''लेकिन......ऐसा क्यो?''

सत्यानंद–''आज सन्तान की परीक्षा है।''

महेद्र वापस आ गए। सत्यानंद ने पूछा–''वापस क्यो आ गए?''

महेद्र–''आप निश्चय ही सिद्ध पुरुष है। लेकिन मै आपका साथ छोड़कर न आऊंगा।''

सत्यानंद–''ठीक है! हम दोनो ही आज रात दूसरी तरह से बाहर होगे।''

धीरानंद बाहर चले गए। सत्यानंद और महेद्र कारागार मे ही रहे।

ब्रह्मचारी का गाना बहुतो ने सुना। और लोगो के साथ जीवानंद के कानो मे भी वह गाना पहुंचा।

महेद्र की रक्षा मे रहने का उन्हे आदेश मिला था– यह पाठको को शायद याद होगा। राह मे एक स्त्री से मुलाकात हो गई। सात दिनो से उसने खाया न था, राह–किनारे पड़ी थी। उसे जीवन–दान देने मे जीवानंद को एक घंटे की देर लग गई। स्त्री को बचाकर, विलम्ब होने के कारण उसे गालियां देते हुए जीवानंद आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिए जाते है– स्वामीजी गाना गाते हुए चले आ रहे है।

झ्र''धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।''.........

जीवानंद महाप्रभु स्वामी के सारे संकेतो को समझते थे।

नदी के किनारे कोई दूसरी स्त्री बिना खाए–पीए तो नही पड़ी हुई है? सोच–विचार जीवानंद नदी के किनारे चले। जीवानंद ने देखा था कि ब्रह्मचारी मुसलमानो द्वारा स्वयं गिरफ्तार होकर चले जा रहे है। अत: ब्रह्मचारी का उद्धार करना ही जीवानंद का पहला कर्त्तव्य था, लेकिन जीवानंद ने सोचा–''इस संकेत का तो अर्थ नही है। उनकी जीवनरक्षा से भी बढ़कर है, उनकी आज्ञा का पालन– यही उनकी पहली शिक्षा है। अत: उनकी आज्ञा ही पालन करूंगा।''

नदी के किनारे किनारे जीवननंद चले। जाते–जाते उसी पेड़ के नीचे नदी–तट पर देखा कि एक स्त्री की मृतदेह पड़ी हुई है और एक जीवित कन्या उसके पास है। पाठकों को स्मरण होगा कि महेद्र की स्त्री–कन्या को जीवानंद ने एक बार भी नही देखा था। उन्होने मन में सोचा– हो सकता है, यही महेद्र की स्त्री–कन्या हो! क्योकि प्रभु के साथ ही उन्होने महेद्र को देखा था। जो हो, माता मृत और कन्या जीवित है। पहले इनकी रक्षा का प्रयास ही करना चाहिए– अन्यथा बाघ–भालू खा जाएंगे। भवानंद स्वामी भी कही पास ही होगे, वह स्त्री का अंतिम संस्कार करेगे– यह सोचकर जीवानंद कन्या को गोद मे लेकर चल दिए।

लड़की को गोद में लेकर जीवानंद गोस्वामी उसी जंगल मे घुसे। जंगल पार कर वे एक छोटे गांव भैरवीपुर मे पहुंचे। अब लोग उसे भरूईपुर कहते है। भरूईपुर मे थोड़े–से सामान्य लोगो की बसती है। पास मे और कोई बड़ा गांव भी नही है। गांव पार करते ही फिर जंगल मिलता है। चारो तरफ जंगल और बीच मे वह छोटा गांव है। लेकिन गांव है। बड़ा सुंदर। कोमल तृण से भरी हुई गोचर भूमि है, कोमल श्यामल पल्लवयुक्त आम, कटहल, जामुन, ताड़ आदि के बगीचे है। बीच मे नील–स्वच्छ जल से परिपूर्ण तालाब है। जल मे बक, हंस, डाहुक आदि पक्षी, तट पर पपीहा, कोयल, चक्रवाक है, कुछ दूर पर मोर पंख फैलाकर नाच रहे है। घर–घर के आंगन मे गाय, बछड़े, बैल है। लेकिन आजकल गांव मे धान नही है। किसी के दरवाजे पर पिंजड़े मे तोता है, तो किसी के यहां मैना। भूमि लिपी–पोती स्वच्छ है। मनुष्य प्रायः सभी दुर्भिक्ष के कारण दुर्बल, कलांत और मलीन दिखाई देते है, फिर भी ग्रामवासियो मे श्री है। जंगल मे अनेक तरह के जंगली खाद्य पैदा होते है। अतः गांव के लोग वहां से फल–फूल लाते है और वही खाकर इस दुर्भिक्ष मे भी अपने प्राण बचाए हुए है।

एक बड़े आम के बगीचे के बीच एक छोटा–सा घर है। चारो तरफ मिट्टी की चहारदीवारी है और चारो कोनो पर एक–एक कमरा है। गृहस्थ के पास गौ–बकरी है, एक मोर है, एक मैना है, एक तोता है। एक बंदर भी था, लेकिन उसे खाना न मिलने के कारण छोड़ दिया गया है। धान कूटने की एक ढेंकी है। बाहर बैल बंधे है, बगल मे नीबू का पेड़ है। मालती जूही की लताएं है– अर्थात् गृहस्थ सुरुचि–सम्पन्न है। लेकिन घर मे प्राणी अधिक नही है। जीवानंद कन्या को लिए हुए घर मे चले गए।

घर में पहुंचते ही जीवानंद ने आंगन के ओसरे में रखे को उठा लिया और भनन्–भनन् उसे चलाने लगे। छोटी लड़की ने चरखे की आवाज कभी सुनी न थी। विशेषतः माता के छूटने के बाद से वह रो रही थी। चरखे की आवाज सुनकर वह भयभीत हो और सप्तम स्वर मे गला ऊंचा कर रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर एक कमरे से सत्रह–अठारह वर्ष की युवती बाहर आई। युवती बाएं बाएं हाथ पर बायां गाल रखे, गर्दन झुकाए ही खड़ी होकर देखने लगी। बोली–"यह क्या दादा! चरखा क्यो कात रहे हो? यह लड़की कहां से पायी दादा? तुम्हे लड़की हुई है क्या? दूसरी शादी की है क्या?"

जीवानंद उठे और लड़की को उसकी गोद मे देकर चपत मारते चले। बोले–"बंदरी कही की! मुझे रंडुआ–भंडुआ समझ लिया है क्या? घर में दुध है?"

इस पर युवती ने कहा–"भला दूध क्यो न होगा? आऊं पियोगे"

जीवानंद ने कहा–"हां पिऊंगा!"

व्यवस्त होकर युवती घर में दूध गरम करने लगी। तब तक जीवानंद बैठकर चरखा कातने लगे। लड़की ने युवती की गोद मे जाकर रोना बंद कर दिया था। उसने क्या समझा, नही कहा जा सकता। शायद इस युवती को खिले पुष्प देखकर सोचा हे, कि यही मेरी मां है। वह केवल एक बार रोई, वह भी शायद आग की आंच खाकर। लड़की का रोना सुनकर जीवानंद ने आवाज लगाई–"अरे निमी! अरी कलमुही बंदरी! तेरा दूध गरम नही हुआ क्या?" उसने भी कहा–"हो गया।" यह कहकर वह एक पथरी मे दूध ढालकर जीवानंद के पास

लाकर रख बैठ गई। जीवानंद ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा-''मन करता है, यही गरम दूध की पथरी तेरे ऊपर उंडेल दूं। तूने क्या समझा कि मै पियूंगा?''

निमी ने पूछा-''तब कौन पिएगा?''

जीवानंद-''यह लड़की पिएगी। देखती नही, अभी दूध पीनेवाली निरी बच्ची है!''

यह सुनकर निमी पलथी मारकर कन्या को गोद मे लेकर चम्मच से दूध पिलाने बैठी। एकाएक उसकी आंखो से कई बूंद आंसू लुढ़क पड़े। बात यह थी कि उसे पहले एक बालक हुआ था, जो मर गया था। उसे इस तरह दूध पिलाने मे अपने बच्चे की याद आ गई।

निमी ने तुरंत अपने आंसू पोछकर हंसते-हंसते जीवानंद से पूछा-''है दादा! बताओ, यह किसकी लड़की है?''

जीवानंद ने कहा-''अरी बंदरी! तुझे क्या पड़ी है?''

निमी ने कहा-''लड़की मुझे दोगे?''

जीवानंद-''तू लेकर क्या करेगी?''

निमी-''मै लड़की को दूध पिलाऊंगी, गोद मे लेकर खिलाऊंगी, बड़ी करूंगी।''

कहते-कहते निमी की आंखो से आंसू ढुलक पड़े। आंसू पोछकर वह फिर दांत निकालकर हंसने लगी। जीवानंद ने कहा-''तू लेकर क्या करोगी? तुझे आप ही कितने बाल-बच्चे होगे।''

निमी-''जब होगे तब होगे। अभी इस लड़की को मुझे दे दो! न हो, बाद मे फिर ले जाना।''

जीवानंद-''तो ले ले, लेकर मर! मै बीच-बीच मे आकर देख जाया करूंगा। यह कायस्थ की लड़की है। मै अब चला....।''

निमी-''वाह दादा! भला खाओगे नही? समय हो गया, तुम्हे मेरी कसम, खाकर तब जाना।''

जीवानंद-''तेरी कसम टालकर तुझे खाऊं, या भात खाऊं!'' फिर बोले-''रहने दे, तुझे न खाऊंगा, भात ही खाऊंगा, ला भात!''

निमी कन्या को गोद मे लिए हुए खाना परोसने मे व्यस्त हो गई। पहले उसने जगह पानी से धो-पोछ दी इसके बाद पीढ़ा-पानी रखकर एक थाली मे भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, रोहू मछली का रसा और दूध लाकर रख दिया। खाने के लिए बैठकर जीवानंद ने कहा-''निमाई बहन! कौन कहता है कि देश मे अकाल है? तेरे गांव मे शायद अकाल घुसा ही नही!''

निमी बोली-''भला अकाल क्यो न होगा- भयंकर अकाल है! हमलोग दो ही प्राणी तो है, बहुत कुछ है, दे-दिलाकर भी भगवान एक मुट्ठी चना ही देते है। हमलोगो के गांव मे पानी बरसा था- याद नही है- तुम्ही तो कह गए थे कि वन मे पानी बरस रहा है, यहां भी बरसेगा! इसलिए हमारे गांव मे धान हो गया। गांववाले और लोग तो शहर मे चावल बेच आए, हमलोगो ने नही बेचा।''

जीवानंद ने पूछा-''जीजाजी कहां है?''

निमी ने गर्दन टेढ़ी कर कहा-''दो-तीन सेर चावल बांधकर क्या जाने किसको देने गए है। किसी ने चावल मांगा था।''

इधर जीवानंद के भाग्य में ऐसा भोजन कभी मिला न था। व्यर्थ बातचीत मे समय न गंवाकर जीवानंद दनादन गपागप-सपासप आवाज करते हुए क्षण भर मे सारा भोजन उदरस्थ कर गए। श्रीमती निमाई मणि ने केवल अपने और पति के लिए पकाया था, अपना हिस्सा उसने भाई को खिला दिया था, थाली सूनी देखकर

शर्म से अपने पति का हिस्सा लाकर थाली मे डाल दिया। जीवानंद ने सब ख्याल छोड़कर उस स्वादिष्ट भोजन को भी उदर नामक महागर्त मे भर लिया। अब निमाई ने पूछा–''दादा! और कुछ खाओगे?''

जीवानंद ने डकार लेते हुए कहा–''और क्या है?''

निमाई बोली–''एक पक्का कटहल है।'' निमाई ने कटहल भी ला रखा। विशेष कोई आपत्ति न कर जीवानंद गोस्वामी ने उसे भी ध्वंसपुर भेज दिया। अब हंसकर निमाई ने पूछा–''दादा! और कुछ नही?''

दादा ने कहा–''अब रहने दे फिर किसी दिन आकर खाऊंगा।''

अंत मे निमाई ने दादा को हाथ-मुंह धोने को पानी दिया। जल ढालते हुए निमाई ने पूछा–''दादा! मेरी एक बात रख लोगे?''

जीवानंद–''क्या?''

निमाई–''तुम्हे मेरी कसम!''

जीवानंद–''अरे बोल न कलमुंही''

निमाई–''बात रक्खोगे?''

जीवानंद–''अरे पहले बता भी तो सही।''

निमाई–''तुम्हे मेरी कसम, हाथ जोड़ती हूं।''

जीवानंद–''अरे बाबा मंजूर है! बता तो सही, क्या कहती है?''

अब निमाई गर्दन टेढ़ी कर एक हाथ से दूसरे हाथ की ऊंगली तोड़ती हुई, शर्माती हुई, कभी नीचे जमीन देखती हुई बोली–'' एक बार भाभी को बुला दूं, मुलाकात कर लो।''

जीवानंद ने हाथ धुलाने वाले लोटे को निमी पर मारने के लिए उठाया, फिर बोले–''लौटा दे, मेरी लड़की! तेरा अन भी किसी दिन वापस कर जाऊंगा। तू बंदरी है, कलमुंही है। तुझे जो बात न कहनी चाहिए, वही बात मेरे सामने कहती है।''

निमी बोली–''अच्छा मै ऐसी ही सही पर भैया! एक बार कह दो, मै भाभी को बुला लाऊं।''

जीवानंद–''तो लो मै जाता हूं।''

यह कहकर जीवानंद उठकर द्वार की तरफ बढ़े। किंतु शीघ्रता-पूर्वक निमाई ने दौड़कर किवाड़ बंद कर दिए और स्वयं किवाड़ से लगकर खड़ी हो गई। बोली–''मुझे मारकर ही बाहर जा सकते हो, भैया! आज भाभी से बिना मुलाकात किए जाने न पाओगे।''

जीवानंद बोले–''जानती है, आदमियो का शिकार करना ही मेरा काम है। मैने अनेक आदमियो का शिकार किया है।''

अब निमी भी क्रोध मे आई। बोली–''खूब किया! अपनी पी का त्याग कर दिया और आदमियो की जान ली। क्या समझते हो, इससे मै मान जाऊंगी? बहुत करोगे मारोगे, लेकिन मै डरनेवाली नही हूं! तुम जिस बाप के लड़के हो, मै भी उसी बाप की लड़की हूं। आदमियो का खून करने मे यदि बड़ाई की बात हो, तो मुझे भी मारकर बड़ाई प्राप्त करो।''

जीवानंद हंसकर बोले–''अच्छा बुला ला- किस पापिनी को बुलाएगी-जा बुला! लेकिन देख आज के बाद कहेगी तो उस साले के भाई व साले को सिर मुंड़ाकर गदहे पर चढ़ाकर गांव के बाहर निकलवा दूंगा।''

निमी ने मन ही मन सोचा–''हुई न मेरी जीत यह सोचती हुई वह घर के बाहर निकल गई। इसके बाद पास ही एक झोपड़ों में वह जा घुसी। कुटी मे सैकड़ो पैबन्द लगे हुए कपड़े पहने, रुक्ष-केशी एक युवती बैठी

चरखा कात रही थी। निमाई ने जाकर कहा–''भाभी! जल्दी करो।'' भाभी ने कहा–''जल्दी क्या?'' नन्दोई ने तुझे मारा है, तो उनके सर में तेल मलना है क्या?''

निमी–''बात ठीक है। घर मे तेल है?''

उस युवती ने तेल की शीशी सामने खिसका दी। निमाई ने झट अंजली मे ऊंड़ेलकर उस युवती के रूखे बालो मे लग दिया। इसके बाद झट जूड़ा बांध दिया। फिर चपत जमाकर बोली–''तेरी ढाके–वाली साड़ी कहां रखी है, बोल?'' उस स्त्री ने कुछ आश्चर्य से कहा–''क्यो जी! कुछ पागल हो गई हो क्या?''

निमाई ने एक मीठा घूंसा जमाकर कहा –''निकाल साड़ी जल्दी!''

तमाशा देखने के लिए युवती ने भी साड़ी बाहर निकाल दी। तमाशा देखने के लिए क्योकि इतनी तकलीफ पड़ने के बाद भी उसका सदा प्रफुल्ल रहनेवाला हृदय अभी भी वैसा ही था। नवयोवन–फूले कमल–जैसा उसकी नई उम्र का यौवन–तेल नही, सजावट नही, आहार नही, फिर भी उसी मैली पैबन्दवाली धोती के अंदर से भी वह प्रदीप्त, अनुपमेय सौन्दर्य फूट पड़ता था। वर्ण मे छायालोक की चंचलता, नयनो मे कटाक्ष, अधरो पर हंसी, हृदय मे धैर्य- मेघ मे जैसे बिजली, जैसे हृदय मे प्रतिमा, जैसे जगत के शब्दो मे संगीत और भक्त के मन मे आनंद होता है, वैसे ही उस रूप मे भी कुछ अनिर्वचनीय गौरव भाग, अनिर्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हंसते–हंसते (लेकिन उस हंसी को किसी ने देखा नही) साड़ी निकाल दी। बोली–''निमी! भला बात तो, क्या होगी।''

निमी बोली–''दादा आये है। तुझे बुलाया है।''

उसने कहा–''अगर मुझे बुलाया है तो साड़ी क्या होगी? चल इसी तरह चलूंगी।'' युवती कहती जाती थी–''कभी कपड़े न बदलूंगी।'' चल, इसी तरह मिलना होगा। आखिर किसी तरह भी उसने कपड़े बदले नही। अंत मे दोनों कुटी के बाहर आई। निमाई को भी राजी होना पड़ा। निमाई भाभी को लेकर अपने घर के दरवाजे तक आ गई। इसके बाद भाभी को अंदर का उसने दरवाजा बंद कर लिया और स्वयं बाहर खड़ी रही।

उस स्त्री की उम्र यही कोई पच्चीस वर्ष के लगभग है, लेकिन देखने मे निमाई से अधिक उम्र की नही जान पड़ती। मैले पैबंद की धोती पहनकर भी, जब वह घर में घुसी तो जान पड़ा कि जैसे घर मे उजाला हो गया। जान पड़ा, जैसे बहुतेरी कलियों का गुच्छा पत्तो से ढंका रहने पर भी, पत्ते हटते ही खिल उठा हो मानो गुलाब–जल की शीशी एकाएक मुंह खुल जाने से महक गयी हो–सुलगती हुई आग मे जैसे किसी ने धूप–धूना छोड़ दिया हो और कमरे का वातावरण ही बदल जाए। पहले तो घर मे घुसकर स्त्री ने पति को देखा नही, फिर एकाएक निगाह पड़ी कि आंगन मे लगे छोटे आम के नीचे खड़े होकर जीवानंद रो रहे है। सुंदरी ने धीर–धीरे उनके पास पहुंचकर उनका हाथ पकड़ लिया। यह कहना भूल गया कि उनकी आंखो मे जल नही आया। भगवान ही जानते है कि उसकी आंखो से आंसू की वह धारा निकलती कि शायद जीवानंद उसमे डूब जाते। लेकिन युवती ने अपनी आंखों मे आंसू नही आने दिए। जीवानंद का हाथ पकड़कर उसने कहा–''छि:! छि:! रोते क्यो हो? मै समझी कि तुम मेरे लिए रोते हो। मेरे लिए न रोना! तुमने मुझे जिस तरह रखा है, मै उसी में सुखी हूं।''

जीवानंद ने माथ उठाकर आंसू पोंछते हुए स्त्री से पूछा–''शंति! तुम्हारे शरीर पर यह सैकड़ो पैबन्द की धोती क्यो है? तुम्हे तो खाने–पहनने की कोई तकलीफ नही है!''

शांति ने कहा–''तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है? रुपये लेकर क्या करना चाहिए, मै नही जानती। जब तुम आओगे- जब तुम मुझे ग्रहण करोगे.....''

जीवानंद-''ग्रहण करूंगा-शांति! मैने क्या तुम्हे त्याग दिया है?''
शांति-''त्याग नही, जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा, जब तुम फिर मुझे प्यार करोगे........''
बात समाप्त होने के पहले ही जीवानंद ने शांति के छाती से लगा लिया और उसके कंधो पर माथा रख बहुत देर तक चुप रहे। इसके बाद एक ठंडी सांस लेकर बोले-''क्यो मुलाकात की?''
शांति -''क्या तुम्हारा व्रत भंग हो गया?''
जीवानंद-''हो व्रत भंग, उसका प्रायश्चित भी है। उसके लिए शोक नही है। लेकिन तुम्हे देखकर तो फिर लौटते नही बन पड़ता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सारा संसार, व्रत-होम, योग-यज्ञ यह सब एक तरफ है और दूसरी तरफ तुम हो। मै किसी तरह भी समझ नही पाता हूं कि कौन-सा पलड़ा भारी है? देश तो अशांत है, मै देश लेकर क्या करूंगा। तुम्हारे साथ एक बीघा भूमि लेकर भी बड़े आनंद से मेरा जीवन बीत सकता है। तुम्हे लेकर मैं स्वर्ग गढ़ सकता हूं। क्या करना है मुझे देश लेकर? देश की उस संतान का अभाग्य है जो तुम्हारी जैसी गृहलक्ष्मी प्राप्त कर भी सुखी हो न सके। मुझसे बढ़कर देश में कौन दु:खी होगा? तुम्हारे शरीर पर ऐसा कपड़ा देखकर मुझे लोग देश मे सबसे दरिद्र ही समझेगे। मेरे सारे धर्मों की सहायता तो तुम हो उसके सामने फिर सनातन-धर्म क्या है? मै किस धर्म के लिए देश-देश, वन-वन बंदूक कंधे पर लेकर प्राणी-हत्या कर इस पाप का भार संग्रह करूं? पृथ्वी संतानो की होगी या नही, कौन जानता है? लेकिन तुम मेरी हो- तुम पृथ्वी से भी बड़ी हो- तुम्ही मेरा स्वर्ग हो। चलो घर चले, अब वापस न जाऊंगा!''
शांति कुछ देर तक बोल न सकी। इसके बाद बोली-''छी:! तुम वीर हो-मुझे इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा सुख यही है कि मै वीर-पत्नी हूं! तुम अधम स्त्री के लिए वीर-धर्म का परित्याग करोगे? तुम अपने वीर-धर्म का कभी परित्याग न करना! देखो मुझे एक बात बताते जाओ, इस व्रत के भंग का प्रायश्चित क्या है?''
जीवानंद ने कहा-''प्रायश्चित है-दान, उपवास-12 कानी कौड़ियां।''
शांति मुस्कराई और बोली-''जो प्रायश्चित हैं मै जानती हूं। लेकिन एक अपराध पर जो प्रायश्चित है- वही क्या शत अपराधो पर भी है?''
जीवानंद ने विस्मित और विवश होकर कहा-''लेकिन यह सब क्यो पूछती हो?''
शांति-''एक भिक्षा है। कहो- मेरे साथ बिना मुलाकात किए प्रायश्चित न करोगे!''
जीवानंद हंसकर कहा-''इस बारे में निश्चित रहो- बिना तुम्हे देखे, मै न मरूंगा। मरने की ऐसी कोई जल्दी भी नही है। अब मै अधिक यहां न ठहरूंगा, लेकिन आंख भरकर तुम्हे देख न सका। फिर भी एक दिन अवश्य देखूंगा। एक दिन हम लोगो के मन की कामना जरूर पूरी होगी! मै अब चला तुम मेरे एक अनुरोध की रक्षा करना- इस वेश-भूषा का त्याग कर दो। मेरे पैतृक मकान मे जाकर रहो।''
शांति ने पूछा-''इस समय कहां जाओगे?''
जीवानंद-''इस समय मठ में ब्रह्मचारीजी की खोज में जाऊंगा। वे जिस भाव से नगर गए है, उससे कुछ चिंता होती है। मठ मे मुलाकात न हुई तो नगर जाऊंगा।''
भवानंद मठ मे बैठे हुए हरिगान मे तल्लीन थे, ऐसे ही समय दु:खी चेहरे से ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी संतान उनके पास आ पहुंचे। भवानंद ने कहा-''गोस्वामी! चेहरा इतना उतरा हुआ क्यो है?''
ज्ञानानंद ने कहा-''कुछ गड़बड़ी जान पड़ती है। कल के कांड से सरकारी आदमी जिसे हल्दी-गेरुआ वस्त्रधारी देखते है, उसे गिरफ्तार कर लेते है। करीब-करीब सभी संतानो ने आज अपना गैरिक वस्त्र उतार दिया है। केवल सत्यानंद प्रभु गेरुवा पहने हुए ही शहर की तरफ गए है। कौन जाने कही मुसलमानो के हथ पड़ जाए!''
भवानंद बोले-''उन्हे बंदी कर रखे, बंगाल में अभी ऐसा कोई मुसलमान नही है। मैं जानता हूं, धीरानंद उसके

पीछे-पीछे गए हैं। फिर भी मैं एक बार नगर घूमने जाता हूं, मठ की रक्षा तुम्हे सौंप जाता हूं।''
यह कहकर भवानंद स्वामी ने एक अलग कोठरी मे जाकर कितने ही तरह के कपड़े निकाले। भवानंद जब उस कोठरी से निकले तो उन्हे पहचानना कठिन था। गेरुआ वस्त्रो के बदले इनके पैरो मे चूड़ीदार पायजामा, शरीर पर अचकन, माथे पर कंगूरेदार पगड़ी और पैरों मे नागौरी जूता था। अब उनके ललाट पर का चंदन-त्रिपुण्ड साफ हो गया था, उनका चेहरा अपूर्व शोभा पा रहा था। उन्हे देखने से किसी पठान जातीय मुसलमान का ही भान होता था। इस तरह से सशस्त्र होकर भवानंद मठ के बाहर हुए। मठ के कोई एक कोस उत्तर दो छोटी पहाड़िया बगल-बगल में थी। पहाड़ी जंगल से भरी हुई थी। वही एक निर्जन स्थान मे संस्थानों की अश्वशाला थी। भवानंद ने वहां से एक घोड़ा निकाला और जीन आदि कसवाकर उस पर सवार हो, सीधे राजधानी की तरफ चल पड़े।
जाते-जाते एकाएक उनकी गति मे बधा पड़ी। उसी राह की बगल में नदी के किनारे वृक्ष के नीचे उन्होने आकाश से गिरी बिजली की तरह दीप्तिमान एक स्त्री को पड़ी हुई देखा। उन्होने देखा, उसमें जीवन के कोई लक्षण दिखाई नही पड़ते- विष की खाली डिबिया पास मे पड़ी हुई है। भवानंद विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। जीवानंद की तरह भवानंद ने भी महेद्र की स्त्री-कन्या हो सकती है, भवानंद के सामने संदेह के लिए वे कारण भी न थे- उन्होने ब्रह्मचारी और महेद्र को बंदी रूप में ले जाते भी देखा न था। कन्या भी वहां न थी। केवल डिबिया देखकर उन्होने समझा कि इस स्त्री ने विष खाकर आत्म-हत्या की है। भवानंद उस शव के पास बैठ गए, बैठकर उसके माथे पर हाथ रखकर बहुत देर तक परीक्षा करते रहे। नाड़ी-परीक्षा, हृदय-परीक्षा आदि अनेक प्रकार से और दूसरे अपरिज्ञात तरीको से परीक्षा कर मन-ही-मन कहा-''अभी मरी नही है-अभी भी समय है- बचाई जा सकती है। लेकिन बचाकर करना भी क्या है? इस तरह कुछ क्षण तक विचार करते रहे और इसके बाद वे उठकर एकाएक वन के अंदर चले गए। वहां से वे एक लता की थोड़ी पत्ती तोड़ लाए। उसी पत्ती को हथेली पर मसलकर उन्होने रस निकाला और अंगुलियो से दांत खोल रस को मुंह मे टपकाया कान मे डाला और थोड़ा मस्तक पर मल दिया। इसके बाद थोड़ा रस उन्होने नाक मे भी डाल दिया। इसी तरह उन्होने बार-बार किया और बीच-बीच में नाक के पास हाथ ले जाकर देखते जाते थे कि कुछ श्वास चली या नही। पहले-पहल तो भवानंद को निराशा होने लगी, लेकिन इसके बाद उनका मुंह प्रसन्नता से खिल उठा- अंगुली मे निश्वास की हलकी अनुभूति हुई। उत्साहित हो उन्होने बारम्बार वही प्रक्रिया की, अब श्वास मजे मे आने-जाने लगी। नाड़ी देखी चल रही थी। इसके बाद ही क्रमश: प्रभात-कालीन अरुणोदय की तरह, प्रभात के समय कमल खिलने की तरह, प्रथम प्रेमानुभव की तरह कल्याणी अपनी आंखे खोलने लगी। यह देखकर भवानंद ने कल्याणी के अर्धजीवित शरीर को घोड़े पर रखा और स्वयं पैदल ही नगर की तरफ निकल गए।''
संध्या होने के पहले ही सन्तान सम्प्रदाय के सभी लोगो ने यह जान लिया कि महेन्द्र के साथ सत्यानन्द स्वामी गिरफ्तार होकर नगर की जेल मे बन्द है। इसके बाद ही एक एक दो-दो दस-दस सौ-सौ हजार-हजार की संख्या मे आकर संतानगण उसी मठ की चहारदीवारी से संलग्न वन मे एकत्रित होने लगे। सभी सशस्त्र थे। सबकी आंखो से क्रोध की अग्नि निकल रही थी, चेहरे पर दृढ़ता और होठो पर प्रतिज्ञा थी। उन लोगो के काफी संख्या मे जुट जाने पर मठ के फाटक पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए स्वामी ज्ञानानन्द ने गगन भेदी स्वर मे कहा- ''अनेक दिनो से हम लोग विचार करते आते है कि इस नवाब का महल तोड़कर यवनपुरी का नाश कर नदी के जल मे डुबा देगे- इन सूअरो के दांत तोड़कर इन्हे आग मे जलाकर माता वसुमती का उद्धार करेंगे। भाइयों ! आज वही दिन आ गया है। हम लोगो के गुरू के भी गुरू परमगुरु जो अनन्त ज्ञानमय सदा शुद्धाचारी, लोकहितैषी और देश हितैषी है- जिन्होने सनातन धर्म की पुन: प्रतिष्ठा के लिए आमरणव्रत लिया

है,प्रतिज्ञा की है- जिन्हे हम विष्णु के अवतार के रूप मे मानते है, जो हमारी मुक्ति के आधार है- वही आज म्लेच्छ मुसलमानो के कारागार मे बन्दी है। क्या हम लोगो की तलवार पर धार नही है?

बांह फैलाकर ज्ञानान्द ने कहा-''इन बाहुओ मे क्या बल नही है? छाती ठोकर बोले- ''क्या इस हृदय मे साहस नही? भाइयो ! बोलो-हरे मुरारे मधुकैटभारे! जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है जिन्होनंने हिरण्यकशिपु, कंस,दन्तवक्र,शिशुपाल आदि दुर्जय असुरो का निधन-साधन किया है, जिनके चक्र के प्रचण्ड निर्घोष से मृत्युंजय शंकर भी भयभीत हुए थे जो अजेय है रण मे विजयदाता है हम उन्ही के उपासक है, उनके ही बल से हमारी भुजाओं मे अनन्त बल है- वह इच्छामय है उनके इच्छा करते ही हम रण- विजयी होगे। चलो, हम लोग उस यवनपुरी का निर्दलन कर उसे धूलि मे मिला दे। उरा शूकर निवास को अग्नि से शुद्ध कर नदी-जल मे धो दे, उसका जर्रा जर्रा उड़ा दे। बोलो- हरे मुरारे मधुकैटभारे!''

इसके साथ ही उस कानन मे भीषण, आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

इसके साथ ही उस कानन मे भीषण आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

सहस्त्रो कंठो के निर्घोष से आकाश कांपा, वसुन्धरा डगमगायी। सहस्त्रो बाहुओ के घर्षण से असीम निनाद हुआ- हजारो ढालो की आवाज से कानो के पर्दे फटने लगे। कोलाहल करते हुए पशु पक्षी जंगल से निकलकर भागे। इस तरह जंगल से श्रेणीबद्ध शिक्षित सेना की तरह सन्तानगण निकल पड़े। वह लोग मुंह से हरिनाम कहते हुए, मिलित पद- विक्षेप से नगर की तरफ चले। उस अंधेरी रात मे पतो का मर्मर शब्द, अस्त्रो की झनकार, कण्ठो का अस्फुट स्वर, बीच बीच में तुमुल स्वर मे हरिनाम का जयघोष! धीरे-धीरे, तेजस्वितापूर्वक सरोष सन्तान-वाहिनी ने नगर मे आकर नगर को त्रस्त कर दिया। इस अकस्मात ब्रजाघात से नागरिक कहां किधर भागे, पता न लगा। नगर- रक्षक हतबुद्धि हो निश्चेष्ट हो गये।

इधर सन्तानो ने पहुंचते ही पहले राजकारागार मे पहुंचकर उसे तोड़ डाला, रक्षको को चटनी बना दिया और सत्यानन्द तथा महेन्द्र को मुक्त कर कन्धो पर चढ़ाकर संतानगण आनंद से नृत्य करने लगे। हरिकीर्तन का अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। महेन्द्र और सत्यानंद करे मुक्त कर संतानों ने जहां-जहां मुसलमानो का घर पाया, आग लगा दी। यह देखकर सत्यानंद ने कहा-''अनर्थक अनिष्ट की आवश्यकता नही। चलो, लौट चलो।'' नगर के अधिकारियो ने संतानो का यह उपद्रव सुनकर सिपाहियो का एक दल उनके दमन के लिए भेज दिया। उनके पास केवल बंदूकें ही नही थी। एक तोप भी साथ मे थी। यह खबर पाते ही सन्तानगण आनन्द कानन से पलट पड़े, लेकिन लाठी,तलवार और छुरो से क्या हो सकता है? तोप के सामने ये लोग पराजित होकर भाग गये।

शान्ति को बहुत थोड़ी ही उम्र मे,बचपन मे ही मातृवियोग हो गया था। जिन उपादानो से शान्ति का चरित्र-गठन हुआ है, उनमे एक यह प्रधान है। उसके पिता एक ब्राह्मण अध्यापक थे। उनके घर मे और कोई स्त्री न थी।

शान्ति के पिता जब पाठशाला मे बालकों को पढ़ाते थे, तो स्वभावत: उनकी बगल मे शांति भी आकर बैठती थी। कितने ही छात्र तो पाठशाला मे ही रहते थे; अन्य समय मे शांति भी उन्ही मे मिलकर खेला करती थी। कभी उनकी पीठ पर चढ़ती थी, कभी गोद मे बैठ खेला करती थी। वे लोग भी शान्ति का आदर करते थे।

इस तरह बचपन से ही पुरुष-साहचर्य का प्रथम प्रतिफल तो यह हुआ कि शान्ति ने लड़कियो की तरह कपड़े पहनना सीखा, या सीखा भी तो वह ढंग परित्याग कर दिया- लड़को की तरह कछाड़ा मारकर धोती पहनने लगी। अगर कोई उसे लड़कियो की तरह कपड़े पहना देता था, तो वह तुरंत उसे खोल देती थी और

फिर कछाड़ा मारकर पहन लेती थी। पाठशाला के बालक कभी जूड़ा बांधते न थे, अत: वह न तो चोटी करती थी और न जूड़ा ही। फिर उसे जूड़ा बांध ही कौन देता? घर मे कोई औरत तो थी नही। पाठशाला के छात्र बांस की फर्राटी मे उसके बाल फंसा देते थे और उसके घुंघराले बाल वैसे ही पीठ पर लहराया करते थे। विद्यार्थी ललाट पर चन्दन और भस्म लगाते थे; अत: शान्ति भी चन्दन-भस्म लगाया करती थी। गले मे यज्ञोपवीत पहनने के लिए भी शांति बहुत रोया करती थी। फिर भी, संध्यादि नैमित्तिक नियमो के समय वह अवश्य उनके पास बैठकर उनका अनुकरण किया करती थी। अध्यापक की अनुपस्थिति के समय लड़को ने उसे अश्लील दो-एक संकेत सिखा दिये थे और वे आपस मे जो कहानियां कहा करते थे, तोते की तरह शान्ति ने भी उन्हे रट डाला था- भले ही उसका कोई अर्थ न जानती हो।

दूसरा फल यह हुआ कि बड़ी पर शान्ति, लड़के जो पुस्तके पढ़ा करते थे- उन्हे अनायास ही पड़ने लगी। वह व्याकरण का एक अक्षर भी जानती न थी, लेकिन भट्टि काव्य, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषधादि के श्लोक व्याख्या के साथ उसने रट डाले थे। यह देखकर शान्ति के पिता ने उसे थोड़ा प्राथमिक व्याकरण भी पढ़ाना शुरू किया। शान्ति भी शीघ्र से शीघ्र सीखने लगी। अध्यापक भी बड़े विस्मित हुए। व्याकरण के साथ उन्होने कुछ साहित्य भी उसे पढ़ाया। इसके बाद ही सब गोलमाल हो गया, शान्ति के पिता का स्वर्गवास हो गया।

अब शान्ति निराश्रय हो गयी। पाठशाला भी उठ गयी, छात्र चले गये। लेकिन वे सब शान्ति को प्यार करते थे, अत: उनमे से एक शान्ति को अपने घर ले गया। इसी छात्र ने बाद मे सन्तान-सप्प्रदाय मे नाम लिखाकर अपना नाम जीवानन्द रखा। हम उन्हे जीवानन्द ही कहेगे।

उस समय जीवानन्द के माता-पिता जीवित थे। उनको जीवानन्द ने कन्या का विशेष परिचय दिया। पिता-माता ने पूछा- ''लेकिन अब परायी लड़की का भार अपने ऊपर लेगा कौन?'' जीवानन्द ने कहा- ''मै ले आया हूं, इसका भार मै ही लूंगा!'' माता-पिता ने भी कहा - ठीक है। जीवानन्द कुंवारे थे, उन्होने शान्ति के साथ शादी कर ली। विवाह के उपरान्त सभी लोग इस सम्बन्ध पर पछताने लगे। सब लोग समझे- ''तो ठीक नही हुआ।'' शांति ने किसी तरह भी लड़कियो के समान धोती न पहनी, किसी तरह भी वह चोटी बांधने को तैयार न हुई। वह घर मे भी अधिक रहती न थी, पड़ोस के लड़को के साथ बाहर खेला करती थी। जीवानन्द के घर के पास ही जंगल है। शांति उस जंगल मे अकेली घुसकर कही मोरो, कही हरिणो और कही सुंदर फूलो की खोज मे घूमा करती थी। सास- ससुर ने पहले तो मना किया, फिर डांट-फटकार की, इसके बाद मारा-पीटा और अन्त मे कोठरी मे बन्द कर दिया। इस डॉट- डपट से शांति बड़ी क्रुद्ध हुई। एक दिन दरवाजा खुला देखकर वह बाहर निकली और बिना किसी से कहे-सुने कही चली गयी।

जंगल के अन्दर टेसू के फूलो को लेकर उनसे शांति ने अपने कपड़े रंग डाले और खासी साधुनी बन गयी। उस समय बंगाल मे दल के दल संन्यासी घूमा करते थे। शांति भी भिक्षा मांगती-खाती जगन्नाथ क्षेत्र की राह मे निकल गयी। थोड़े ही दिनो बाद उसे संन्यासियो का दल मिल गया; वह भी उन्ही मे मिल गयी।

उस समय के सन्यासी आजकल जैसे न होते थे- सुशिक्षित बलिष्ट युद्ध विशारद एवं अन्यान्य गुणो से गुणवान होते थे। वे लोग वस्तुत: एक तरह के राजविद्रोही होते थे- राजाओ का राजस्व लूटकर खाते थे। बलिष्ट बालक पाते ही उनका अपहरण करते थे, उन्हे शिक्षित कर अपने सम्प्रदाय मे मिला लिया करते थे। इसलिए लोग उन्हे 'लकड़-पकड़वा' या 'लकड़ सुंघवा' भी कहते थे।

शांति बालक संन्यासी के रूप मे उनमे मिली थी। संन्यासी लोग पहले कोमल देह देखकर उसे दल मे मिलाते न थे; लेकिन शांति की बुद्धि-प्रखरता,चतुरता और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक उन्होने उसे अपने दल मे मिला लिया। शांति उनके दल मे मिलकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी, अत: परिश्रम-

सहिष्णु हो उठी। उनके साथ उसने देश- विदेश का भ्रमण किया, अनेक लड़ाइयां देखी और अस्त्र-विद्या मे निपुण हो गयी।

क्रमश: उसके यौवन के लक्षण प्रकट होने लगे। अनेक संन्यासियो ने जान लिया कि यह छद्‌मवेश मे स्त्री है। लेकिन अधिकतर संन्यासी उस समय जितेन्द्रिय होते थे, इसलिये किसी ने ध्यान न दिया।

संन्यासियो मे अनेक विद्वान भी थे। शांति को संस्कृत मे कुछ ज्ञान है, यह देखकर एक संन्यासी उसे पढ़ाने लगा-लेकिन क्या काबुल मे गधे नही होते? जितेन्द्रिय संन्यासियो मे वह संन्यासी कुछ दूसरे ढंग का था। या हो सकता है कि शांति का अभिनव यौवन-सन्दर्भ देखकर वह संन्यासी अपनी इन्द्रियो द्वारा परिपीड़ित होकर अपने को वश मे न रख सका हो। अत: वह अपनी शिष्या को श्रृंगार रस के काव्य पढ़ाने लगा और उनकी व्याख्या खोलकर अश्राव्य रूप मे सुनाने लगा। उससे शान्ति का अपकार न होकर कुछ उपकार ही हुआ। लज्जा किसे कहते है, शान्ति ने यह सीखा ही न था; अब व्याख्या सुनकर स्त्री-स्वभाववश स्वत: उसमे लज्जा का उदय हुआ। पुरुषचरित के ऊपर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा उस पर छा गयी-उसने शान्ति के गुणो को समाधिक बढ़ा ही दिया। शान्ति ने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याधा जैसे हरिण के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वह संन्यासी शान्ति को देखकर उसके पीछे दौड़ता था। किन्तु शान्ति ने व्यायाम आदि के कारण पुरुष-दुर्लभ बल-संचय किया था। अध्यापक के समीप आते ही वह उन्हे जोर के घूंसे और लात जमाती थी, जो साधारण न होते थे। एक दिन एकान्त होकर संन्यासी ने बड़ा जोर लगातार शान्ति का हाथ पकड़ लिया। शान्ति हाथ छुड़ा न सकी। लेकिन संन्यासी ने दुर्भाग्यवश शान्ति का बायां हाथ पकड़ा था, अत: दाहिने हाथ से शान्ति ने संन्यासी के सिर मे इस जोर का घूंसा जमाया कि संन्यासी कटे पेड़ की तरह धड़ाम से चकराकर गिर पड़े। शान्ति ने संन्यासी सम्प्रदाय का त्याग कर पलायन किया।

शान्ति निर्भय थी, अकेली अपने गांव की तरफ चल पड़ी। साहस और बाहुबल से वह निर्विघ्न यात्रा करती रही। भिक्षा मांगकर और जंगली कन्द-मूल आदि फलो से अपनी क्षुधा मिटाती वह अनेक आपदाओ मे विजय-लाभ करती अपने ससुराल आ पहुंची। उसने देखा, श्वसुर का स्वर्गवास हो गया है; लेकिन सास ने उसे घर मे स्थान न दिया-जाति जाने का डर था। शान्ति तुरन्त बाहर निकल गयी।

जीवानन्द घर मे ही थे। उन्होने शान्ति का पीछा और उसे राह मे पकड़कर पूछा-''तुम मेरा घर छोड़कर कहां चली गयी थी? इतने दिनो तक कहां रही?'' शान्ति ने सारी सच्ची बाते कह दी। जीवानन्द को सच-झूठ की परख थी। उसने शान्ति की बात का विश्वास किया।

अप्सराओ के भ्रूविलास से युक्त कटाक्ष-ज्योति द्वारा निर्मित जो काम-शेर है, उसका अपव्यय-पुष्प घन्वा मदनदेव विवाहित दम्पतियो के प्रति नही किया करते। अंगरेज पूर्णिमा की रात को भी शाही राह पर गैस या बिजली जताते है, बंगाली देह मे लगाने वाले तेल का ढाल देते है; मनुष्यो की बात तो दूर है, सूर्य देव के उदय के बाद भी कभी-कभी चन्द्रदेव आवास मे उदित रहते है, इन्द्र सागर पर भी वृष्टि करता है; जिस सन्दूक मे छिपाकर धनराशि रखी रहती है, कुबेर उसी सन्दूक से धन ले जाते है; यमराज जिसके घर से सबको ले गये रहते है, प्राय: उसी घर के बचे हुए लोगो से दृष्टि डालते है, केवल रतिप्रति ऐसी निर्बुद्धिता नही करते-जहां वैवाहिक गांठ बंध जाती है, वहां फिर वे परिश्रम नही करते-प्रजापति को सारा भार देकर, जहां किसी के ह्रदय के रक्तको उत्तेजित कर सके, मदनदेव वही जाते है। लेकिन आज तो जान पड़ता है पुष्पधन्वाको और कोई काम था-एकाएक उन्होने दो पुष्पवाणो का अपव्यय किया-एक ने आकर जीवानन्द के ह्रदय को वेध दिया- दूसरे ने शान्ति के ह्रदय मे प्रवेश कर उसे बता दिया यह स्त्रियों का कोमल ह्रदय है। नवमेघ से छलके प्रथम जलकणो से भीगी पुष्पकलिका की तरह शान्ति सहसा खिलकर जीवानन्द के मुंह के तरफ निहारती रही।

जीवानन्द ने कहा– ''मै तुम्हें परित्याग न करूंगा। मै जब तक लौटकर न आऊं, तुम यही खड़ी रहना।''

शांति ने पूछा–''तुम लौटकर आओगे न?''

जीवानन्द और कोई उत्तर न देकर, और किसी की परवाह न कर, राह की बगल मे नारियल वृक्षो की छाया मे शांति के अधरो पर अधर रख, सुधपान कर चले गये।

माता को समझा–बुझाकर और विदा लेकर जीवानन्द तुरंत लौट आये। हाल मे ही जीवानन्द की बहन निमाई की शादी भैरवीपुर मे हुई थी। बहनोई के साथ जीवानंद का प्रेम था। जीवानंद शांति को लेकर वही गये। बहनोई ने उन्हे थोड़ी जमीन दी; जीवानन्द ने उस पर एक कुटी का निर्माण किया और वही शांति के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। स्वामी के सहवास मे शांति का पुरुष भाव धीरे–धीरे गायब होने लगा। सुख स्वप्न की तरह उनका जीवन बीतने लगा। लेकिन सहसा वह सुख स्वप्न भंग हो गया– सत्यानन्द के हाथ मे पड़कर जीवानन्द सन्तान धर्म ग्रहण कर शान्ति का परित्याग कर चले गये। पतित्याग के बाद यह प्रथम मिलन निमाई के प्रयत्न से हुआ, जिसका वर्णन पूर्व परिच्छेद मे हो चुका है।

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाई के दरवाजे पर जा बैठी। निमाई गोद मे लड़की को लेकर उसके पास आ बैठी। शांति की आंखो में नही है, उसने उन्हे पोछ डाला है, बल्कि चेहरे पर मधुर मुस्कराहट है। फिर भी वह कुछ तो गम्भीर चिन्तायुक्त अनमनी सी दिखाई पड़ती ही है, उसे देखकर निमाई बोली– ''मुलाकात तो हो गयी न?'' शान्ति ने कोई उत्तर नही दिया, वह चुप रही। निमाई ने देखा कि शान्ति किसी तरह मन का भाप न बताएगी। शान्ति मन की बताना पसन्द भी नही करती, यह जानती हुई भी निमाई ने बात का ढर्रा उठाया, बोली– ''बता दो भाभी! यह कन्या कैसी है?''

शान्ति ने कहा– ''यह लड़की कहां से पायी –तेरे लड़की कब हुई रे।''

''मेरी नही, दादा की है!''

निमाई ने शान्ति को जलाने के लिए यह बात कही थी, ''दादा की लड़की'' माने यह कि उसने भाई से यह लड़की पायी है। लेकिन शान्ति ने यह न समझा कि निमाई उसे चिढ़ाने के लिए कह रही है। अतएव शान्ति ने उत्तर दिया –''मै लड़की के बाप की बात नही पूछती हूं, मै यह पूछती हूं कि इस लड़की की मां कौन है?''

निमाई उचित दण्ड पाकर अप्रतिभ होकर बोली–''कौन जाने किसकी लड़की है, दादा क्या जाने कहां से पकड़कर उठा लाये है – पूछने का भी अवसर न मिला। आजकल अकाल के दिनो मे कितने लोग लड़के–बच्चे फेक जाते है। मेरे ही पास कितने लोग अपनी सन्तान बेचने के लिए आये थे। लेकिन दूसरो के बाल–बच्चो को ले कौन?'' (फिर उन आंखो मे सहसा जल भर आया और निमाई ने उसे पोछ डाला) ''लड़की है बड़ी सुन्दर! भोली–भाली, गोरी–चिट्‌टी देखकर दादा से मैने मांग ली है।''

इसके बाद शान्ति की निमाई के साथ अनेक तरह की बाते होने लगी। फिर निमाई के पति को घर लौट आते देख शान्ति उठकर कुटी मे चली गयी।

कुटी मे पहुंचकर उसने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद चूल्हे की जितनी राख वह बटोर सकी, बटोर ली। बची हुई राख के ऊपर जो अपने खाने के लिए उसने चावल पका रखे थे, उन्हे भी वहां से हटा दिया। इसके उपरान्त बहुत देर तक सोच मे पड़ी रही और फिर आप–ही–आप बोली– ''इतने दिनो से जो सोच रखा था, आज वही करूंगी। जिस आशा से इतने दिनो तक नही किया, आज सफल हुई–सफल क्यो, निष्फल–निष्फल! यह जीवन ही निष्फल है। जो किया है वही करूंगी एक बार मे जो प्रायश्चित है, वही सौ बार मे भी

है।"

यह सोचती हुई शान्ति ने भात चूल्हे मे फेंक दिया। जगल में से कन्द-मूल-फल ले आई और अन्न के बदले उन्ही को खाकर उसने अपना पेट भर लिया। इसके बाद उसने वही ढाका वाली साड़ी निकाली जिस पर निमाई का इतना आग्रह था। उसका किनारा उसने फाड़ डाला और शेष कपड़े को गेरू के रंग मे रंग दिया। वस्त्र को रगतें और सुखाते शाम हो गई। शाम हो जाने पर दरवाजा बन्द कर शान्ति बड़े तमाशे मे लग गयी। माथे के आजानुलम्बित केशो का कुछ का कुछ अंश उसने कैची से काट डाला और अलग रख दिया। बाकी बचे हुए उस कपड़े को उसने दो भागो मे विभक्त कर दिया- एक तो उसने पहन लिया और दूसरे से अपने ऊपरी अंगो को ढंक लिया। इसके बाद उसने बहुत दिनों से काम मे न लाया गया शीशा निकाला और उसमे अपना रूप देखते हुए सोचा-"हाय! मै क्या करने जा रही हूं?" इसके बाद ही दु:खी हृदय से वह अपने उन काटे हुए बालो को लेकर मूंछ और दाढ़ी बनाने लगी। लेकिन उन्हे वह पहन न सकी। उसने सोचा- "छि:! यह क्या? अभी क्या इसकी उम्र है। फिर भी बुड्ढे को चरका देने के लिए इन्हे रख लेना अच्छा है?" यह सोचकर उसने छिपाकर उन्हे अपने पास रख लिया। इसके बाद घर में से एक बड़ा हरिणचर्म निकालकर उसने गले के पास उसे पहनकर गांठ दी और घुमाकर शरीर आवृत कर जंघो तक लटका लिया। इस तरह सज्जित होने के बाद इस नये संन्यासी ने घर मे एक बार चारो तरफ देखा। आधी रात हो जाने पर, शान्ति ने इस प्रकार संन्यासी वेश मे दरवाजा खोलकर अन्धकारपूर्ण गम्भीर वन मे प्रवेश किया। वनदेवियो ने उस एकान्त रात मे अपूर्व गायन सुना-

(बंगला यथावत)

(1)

"दूरे उड़ि घोड़ा चढ़ि कोथा तुमी जाओ रे,
समरे चलि तू आमि हाम ना फिराओ रे
हरि-हरि हरि-हरि बोलो रणरंगे
झांप दिबो प्राण आजि समर-तरंगे,
तुमि कार कि तोमार केलो एसो संगे,
रमण ते नाहिं साध, रणजय गाओ रे !"

(2)

पाये धरी प्राणनाथ आमा छेड़े जेओ ना,
एई सुनो, बाजे घन रणजय बाजना।
नापिछे तुरंग मोर रण करे कामना,
उड़िलो आमार मन घरे आर रबो ना।
रमधी ते नाहिं साथ, रणजय गाओर।"

दूसरे दिन आनंदमठ के अन्दर एक कमरे मे बैठे, निरुत्साह तीन संताननायक आपस मे बातें कर रहे थे। जीवानन्द से सत्यानन्द से पूछा- "महाराज! ईश्वर हम लोगो पर इतने अप्रसन्न क्यो है? किस दोष से हम लोग मुसलमानो से पराभूत हुए?"

सत्यानंद ने कहा- "भगवान अप्रसन्न नही है। युद्ध मे जय-पराजय दोनो होती है। उस दिन हम लोगो की विजय हुई थी, आज पराजय हुई है, अन्त मे फिर जय है। हमे निश्चित भरोसा है कि जिन्होने इतने दिनो तक

हमारी रक्षा की है, वे शंक -वक्र-गदाधारी वनमाली फिर हमारी रक्षा करेगे। उनके पदस्पर्श कर हम लोग जिस महाव्रत से व्रती हुए है,अवश्य ही उस व्रत की हम लोगो को साधना करनी होगी- विमुख होने पर हमे अनन्त नरक का भोग करना पड़ेगा। हम अपने भावी मंगल के बारे मे नि:संदेह है। लेकिन जैसे देव-अनुग्रह के बिना कोई काम सिद्ध हो नही सकता, वैसे ही पुरुषार्थ की भी आवश्यकता होती है। हम लोग जो पराजित हुए उसका कारण था कि हम नि:शस्त्र थे- गोली-बन्दूक के सामने लाठी, तलवार,भाला क्या कर सकता है! अत: हम लोग अपने पुरुषार्थ के न होने से हारे है। अब हमारा यही कर्तव्य है कि हमे भी अस्त्रो की कमी न हो।''

जीवानन्द- ''यह तो बहुत ही कठिन बात है।''

सत्यानन्द-''कठिन बात है, जीवानन्द? सन्तान होकर तुम मुंह से ऐसी बात निकालते हो? सन्तानो के लिए कठिन है क्या?''

जीवानन्द-''आज्ञा दीजिये, इनका संग्रह किस प्रकार होगा?''

सत्यानन्द-''संग्रह के लिए आज रात मै यात्रा करूंगा। जब तक मै लौटकर न आऊं, तब तक तुम लोग किसी भारी काम मे हाथ न डालना। लेकिन सन्तानो का आपस की एकता की रक्षा करना, उनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करना- इसका भार तुम दोनो पर ही है।''

भवानंद ने पूछा-''तीर्थयात्रा कर इन चीजो का संग्रह आप कैसे करेगे? गोला-गोली, बन्दूक, तोप खरीदकर भेजवाने मे बड़ा गोलमाल होगा; फिर आप इतना पाएंगे कहां, बेचेगा ही कौन, ले ही कौन आएगा?''

सत्यानन्द -''यह सब चीजें खरीदकर लाई जा नही सकती। मै कारीगर भेजूंगा, यही तैयार करनी होगी।''

जीवानन्द-''क्या यही, इसी आनन्दमठ में?''

सत्यानन्द-''यह कैसे हो सकता है-इसके उपाय की चिंता मै बहुत दिनो से कर रहा हूं। भगवान ने अब उसका सुयोग उपस्थित कर दिया है। तुम लोग कहते थे-भगवान प्रतिकूल है, लेकिन मै देखता हूं कि भगवान अनुकूल है।''

भवानंद-''कहां कारखाना खोलेगे?''

सत्यानंद-''पदचिन्ह में।''

जीवानंद-''यह कैसे? वहां कैसे होगा?''

सत्यानंद-''नही तो महेन्द्रसिंह को मैंने किसलिए व्रत ग्रहण करने को इतना तैयार किया है?''

भवानंद-''महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण कर लिया है?''

सत्यानंद-''व्रत ग्रहण नही किया है, लेकिन आज ही रात मे उसे दीक्षित करूंगा।''

जीवानंद-''कैसे? महेन्द्र को व्रत ग्रहण करने के लिए क्या उपाय हुआ है-हम लोग नही जानते। उसकी स्त्री-कन्या का क्या हुआ? उन्हे कहां रखा गया? आज नदी किनारे मैने एक कन्या पायी थी; उसे मैने अपनी बहन के पास पहुंचा दिया है। उस कन्या के पास एक सुन्दर स्त्री मरी पड़ी हुई थी। वही तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नही थी? मुझे ऐसा ही भ्रम हुआ था।''

सत्यानंद-''वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या थी।''

भवानंद चमक उठे अब वह समझ गये कि जिस स्त्री को उन्होने पुनर्जीवित किया है, वही महेन्द्र की पी कल्याणी है। लेकिन उसकी कोई बात इस समय उठाना उन्होने उचित न समझा।

जीवानंद ने पूछा-''महेन्द्र की स्त्री मरी कैसे?''

सत्यानंद-''जहर खाकर।''

जीवानंद-''जहर क्यो खाया?''

सत्यानंद-''भगवान ने स्वप्न में उसे प्राण-त्याग करने का आदेश किया था।''

भवानंद-''वह स्वप्नादेश क्या सन्तानो के कार्यो के लिए ही हुआ था?''

सत्यानंद-''महेन्द्र से मैंने ऐसा ही सुना है। अब संध्या समय उपस्थित है, मै संध्यादि कृत्य के लिए जाता हूं। इसके बाद नये सन्तानो की दीक्षा की व्यवस्था करूंगा।''

भवानंद-''सन्तानो की? क्या महेन्द्र के अतिरिक्त और भी कोई सन्तान-सम्प्रदाय मे सम्मिलित हुआ चाहता है?''

सत्यानंद-''हां, एक और नय आदमी है। अब से पहले मैने उसे कही देखा नही था। आज ही मेरे पास आया है। वह बहुत कोमल युवा पुरुष है। उसकी भाव-भंगी और बातो से मै बहुत प्रसन्न हूं- खरा सोना जान पड़ता है वह! उसके संतान- कार्य की शिक्षा का भार जीवानंद पर है। जीवानन्द लोगो को चित्त-आकर्षण कर लेने मे बहुत पटु है।.... अब मै जाऊंगा। तुम लोगो के प्रति मेरा एक उपदेश बाकी है। बहुत मन लगाकर उसे सुनो!''

दोनो ही शिष्यो ने करबद्ध हो निवेदन किया-''आज्ञा दीजिये।''

सत्यानन्द ने कहा-''तुम दोनो से यदि कोई अपराध हुआ हो, या आगे करो, तो मेरे वापस आ जाने के पहले प्रायश्चित न करना। मेरे आ जाने पर अवश्य ही प्रायश्चित करना होगा।''

यह कहकर सत्यानन्द स्वामी अपने स्थान पर चले गये। भवानन्द और जीवानन्द ने एक-दूसरे का मुंह ताका।

भवानन्द ने पूछा-''तुम्हारे ऊपर इशारा है क्या?''

जीवानन्द-''जान तो पड़ता है! बहन के घर में कन्या को पहुंचाने गया था।''

भवानन्द-''इसमे क्या दोष है? यह तो निषिद्धि नही है! ब्राह्मणी के साथ मुलाकात तो नही की है?''

जीवानन्द-''जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही समझते है?''

(4)

सायंकृत्य समाप्त करने के उपरान्त सत्यानन्द स्वामी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा-''तुम्हारी कन्या जीवित है।''

महेन्द्र-''कहां है महाराज?''

सत्यानन्द-''तु मुझे महाराज क्यों कहते हो?''

महेन्द्र-''सब यह कहते है, इसलिए। मठ के अधिकारियो को भी राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता है। मेरी कन्या कहां है, महाराज?''

सत्यानन्द-''इसे सुनने के पहले एक बात का ठीक उत्तर दो- तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करोगे?''

महेन्द्र-''इसे मैंने मन-ही-मन निश्चित कर लिया है।''

सत्यानन्द-''तब कन्या कहां है, सुनने की इच्छा न करो!''

महेन्द्र-''क्यो महाराज?''

सत्यानन्द-''जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे अपनी पी, पुत्र, कन्या, स्वजनो से किसी से भी सम्बन्ध नही रखना पड़ता-स्त्री, पुत्र, कन्या का मुंह देखने से भी प्रायश्चित करना होता है। जब तक संन्तानो की मनोकामना सिद्ध न हो, तब तक तुम कन्या का मुंह देख न सकोगे। अतएव यदि सन्तान-धर्म ग्रहण करना निश्चित हो, तो कन्या का पता पूछकर क्या करोगे? देख तो पाओगे नही।...''

महेन्द्र-''यह कठिन नियम क्यो, प्रभु?''

सत्यानन्द-''संन्तानो का काम बहुत ही कठिन है। जो सर्वत्यागी है, उसके अतिरिक्त यह काम और किसी के

लिए उपयुक्त नही है। मायारज्जु से जिस का चित बंधा रहता है, खूंटे मे बंधी घोड़ी की तरह वह कभी स्वर्ग मे पहुंच नही सकता।''

महेन्द्र-''महाराज! बात मैंने ठीक-ठीक समझी नही। जो स्त्री-पुत्र का मुंह देखता है, वह क्या किसी गुरुतर कार्य का अधिकारी नही हो सकता?''

सत्यानन्द-''पुत्र-कलत्र का मुंह देखने से हम देव कार्य भूल जाते है। सन्तान-धर्म का नियम काम और किसी के लिए उपयुक्त नही है।''

महेन्द्र-''तो क्या न देखने से ही कन्या को भूल जाऊंगा?''

सत्यानन्द-''यदि न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करो!''

सत्यानन्द- ''सन्तान दो तरह के है-दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित है, वे या तो संसारी है अथवा भिखारी। वे लोग केवल युद्ध के समय आकर उपस्थित हो जाते है; लूट का हिस्सा या पुरस्कार पाकर फिर चले जाते है। जो दीक्षित होते है, वे सर्वस्वत्यागी है। यही लोग सम्प्रदाय के कर्त्ता है। तुम्हें मै अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध न करूंगा। युद्ध के समय लाठी-लकड़ीवाले अनेक लोग है। बिना दीक्षित हुए सम्प्रदाय के किसी गुरुतर कार्य के अधिकारी तुम हो नही सकते।''

महेन्द्र- ''दीक्षा क्या है? दीक्षित क्यो होना होगा? मै तो अब से पहले ही मन्त्र ग्रहण कर चुका हूं।''

सत्यानंद- ''उस मंत्र का त्याग करना होगा।''

महेन्द्र- ''मन्त्र का त्याग करूंगा कैसे?''

सत्यानन्द- ''मै वह पद्धति बता देता हूं।''

महेन्द्र- ''नया मन्त्र क्यो लेना होगा?''

सत्यानन्द- ''सन्तागण वैष्णव है।''

महेन्द्र- ''यह मै समझ नही पाता हूं कि सन्तान वैष्णव कैसे है। वैष्णवो का तो अहिंसा ही परमधर्म होता है।''

सत्यानन्द- ''वह चैतन्य देव का वैष्णव-धर्म है। नास्तिक बौद्ध धर्म के अनुकरण से जो वैष्णवता उत्पन्न हुई थी, उसी का लक्षण है। प्रकृत वैष्णव-धर्म का लक्षण दुष्टो का दमन और धरित्री का उद्धार है। कारण, भगवान विष्णु ही संसार के पालक है। उन्होने दस बार शरीर धारणकर पृथ्वी का उद्धार किया था। केशी, हिरण्यकशिपु, मधु-कैटभ, पुर, नरक आदि दैत्यो का, रावणादि राक्षसो का तथा शिशुपाल आदि का संहार उन्होने किया है। वही जेता, जयदाता, पृथ्वी के उद्धारकर्ता और सन्तानो के इष्ट देवता है। चैतन्यदेव का वैष्णव धर्म वास्तविक वैष्णव-धर्म नही है-वह धर्म अधूरा है। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय है- लेकिन भगवान केवल प्रेममय ही नही है, वे अनंत शक्तिमय भी है। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय ही नही है,वे अनंत शक्तिमय भी है। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय है, सन्तानो के विष्णु केवल शक्तिमय है। हम दोनो ही वैष्णव है-लेकिन दोनो ही अधूरे है। बात समझ गये?''

महेन्द्र- ''नही! यह तो कैसी नयी-नयी-सी बाते है। कासिमबाजार मे एक पादरी के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसने भी कुछ ऐसी ही बाते कही थी। अर्थात ईश्वर प्रेममय है-तुम लोग यीशु से प्रेम करो-यह भी ऐसी ही बाते है!''

सत्यानन्द- ''जिस तरह की बातो से हमारे चौदह पुरखे समझते आते है-उसी तरह की बातो से हम तुम्हे समझा रहे है। ईश्वर त्रिगुणात्मक है- यह सुना है?''

महेन्द्र- ''हा, सत्व, रजस, तमस-यही तीन गुण है।''

सत्यानंद- ''ठीक । इन तीनो गुणो की पृथक-पृथक उपासना होती है। उनके सत्व से दया-दक्षिणा आदि की उत्पत्ति होती है। वे अपनी उपासना भक्तिद्वारा करते है- चैतन्य सम्प्रदाय यही करता है। रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति होती है; इसकी उपासना युद्ध द्वारा, देवद्वेषीगण के निधन द्वारा होती है-वही हम करते है। और तमोगुण से ही भगवान भगवान अपनी साकार चतुर्भुज आदि विविध मूर्ति धारण करते है। केसर-चन्दनादि उपहार द्वारा उस गुण की पूजा होती है-सर्व साधारण वही करते है. अब समझे?''

महेन्द्र- ''समझ गया-संतानगण उपासक सम्प्रदाय मात्र है।''

सत्यानंद- ''ठीक है! हम लोग राज्य नही चाहते-केवल मुसलमान भगवान के विद्वेषी है- इसलिए समूल विनाश करना चाहते है।''

सत्यानन्द बातचीत समाप्त कर महेन्द्र के साथ उठकर उस मठस्थित देवालय मे जहां विराट आकार की भगवान विष्णु की मूर्ति विराजित थी, वही पहुंचे। उस समय वहां अपूर्व शोभा थी- रजत,स्वर्ण और रत्नरंजित प्रदीपो से मंदिर आलोकित हो रहा था; राशि-राशि पुष्पो की शोभा से मंदिर और देव मूर्ति शोभित थी; सुगन्धित मधुर धूमराशि से कक्ष वस्तुतः देवसान्निध्य का प्रमाण उपस्थित कर रहा था। मंदिर मे एक और पुरुष बैठा हुआ- ''हरे मुरारे'' स्तोत्र का पाठ कर रहा था। सत्यानंद के वहां पहुंचते ही उसने उठकर उन्हे प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा- ''तुम दीक्षित होगे?''

उसने कहा- ''मुझ पर कृपा कीजिये!''

सत्यानन्द- ''तुम लोग इन भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो कि संतान-धर्म के सारे नियमो का पालन करोगे!''

दोनो- ''करूंगा।''

सत्यानन्द- ''जितने दिनो तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनो तक गृहधर्म का परित्याग किये रहोगे?''

दोनो- ''करूंगा।''

सत्यानन्द- ''माता-पिता का त्याग करोगे?''

दोनो- ''करूंगा।''

सत्यानन्द- ''भ्राता-भगिनी?''

दोनो- ''त्याग करूंगा।''

सत्यानंद- ''दारा-सुत?''

दोनो- ''त्याग करूंगा।''

सत्यानंद- ''आत्मीय-स्वजन? दास-दासी?''

दोनो- ''इन सबका त्याग किया।''

सत्यानंद- ''धन-सम्पदा-भोग?''

दोनो- ''सबका परित्याग।''

सत्यानन्द- ''इन्द्रियजयी होगे? नारियो के साथ कभी एक आसन पर न बैठोगे?''

दोनो- ''न बैठेगे; इन्द्रियां वश मे रखेगे।''

सत्यानन्द- ''भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो-अपने लिए या अपने स्वजनो के लिए अर्थोपार्जन नही करोगे! जो कुछ उपार्जन करोगे, उसे वैष्णव धनागार को अर्पित कर दोगे!''

दोनो- ''देगे।''

सत्यानन्द- ''सनातन-धर्म के लिए स्वयं अस्त्र पकड़कर युद्ध करोगे?''

दोनो– ''करेगे।''

सत्यानन्द– ''रण में कभी पीठ न दिखओग?''

दोनो– ''नही।''

सत्यानन्द– ''यह प्रतिज्ञा भंग हो तो?''

दोनो– ''जलती चिता मे प्रवेश कर अथवा विषपान कर प्राण त्याग देंगे।''

सत्यानन्द– ''और एक बात है, और वह है जाति। तुम किस जाति के हो? महेन्द्र तो कायस्थ है। तुम्हारी जाति?''

दूसरे व्यक्ति ने कहा– ''मै ब्राह्मण-कुमार हूं।''

सत्यानन्द– ''ठीक। तुम लोग अपनी जाति का त्याग कर सकोगे? समस्त सन्तान एक जाति मे है। इस महाव्रत मे ब्राह्मण-शूद्र का विचार नही है। तुम लोगो का क्या मत है?''

दोनो– ''हम लोग भी जाति का ख्याल न करेगे। हम सब माता की सन्तान एक जाति के है।''

सत्यानन्द– ''अब मै तुम लोगो को दीक्षित करूंगा। तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भंग न करना। भगवान मुरारि स्वयं इसके साक्षी है। जो रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध, शिशुपाल आदि के विनाश-हेतु है, जो सर्वान्तर्यामी है, सर्वजयी है, सर्व शक्तिमान है और सर्वनियन्ता है, जो इन्द्र के वज्र को भी बिल्ली के नाखूनो के समान समझते हैं, वही प्रतिज्ञा-भंगकारी को विनष्ट कर अनन्त नरकवास देगे।''

दोनो– ''तथास्तु!''

सत्यानन्द– ''अब तुम लोग गाओ– ''वन्देमातरम–''

दोनो ने मिलकर एक एकांत मन्दिर मे भक्ति-भावपूर्वक मातृगीत का गान किया। इसके बाद ब्रह्मचारी ने उन्हे यथाविधि दीक्षित किया।

दीक्षा समाप्त होने के बाद सत्यानन्दजी महेन्द्र को एक बहुत ही एकांत स्थान मे ले गये। दोनो के वहां बैठने के बाद सत्यानन्द ने कहना आरम्भ किया–''वत्स! तुमने तो यह महाव्रत ग्रहण किया है, उससे मुझे जान पड़ता है कि भगवान सन्तानो पर सदय है। तुम्हारे द्वारा माता का महत कार्य सिद्ध होगा। तुम ध्यानपूर्वक मेरी बाते सुनो! तुम्हे जीवानन्द, भगवान के साथ वन-वन घूमकर युद्ध करना नही पड़ेगा। तुम पदचिन्ह मे वापस लौट जाओ। अपने घर मे रहकर ही तुम्हे सन्तान-धर्म का पालन करना होगा।''

यह सुनकर महेन्द्र विस्मित और उदास हुए, लेकिन कुछ बोले नही। ब्रह्मचारी कहने लगे– ''इस समय हम लोगो के पास आश्रय नही है,ऐसा स्थान नही है कि यदि प्रबल सेना आकर घेरकर आक्रमण करे तो हम लोग खाद्यादि के साथ फाटक बन्द कर कुछ दिनो तक युद्ध कर सके। हम लोगो के पास गढ़ नही है। वहां अट्टालिका भी तुम्हारी है, गांव भी तुम्हारे अधिकार मे है–मेरी इच्छा है कि अब वहां एक गढ़ तैयार हो। परिखा प्राचीर द्वारा पदचिन्ह को घेर देने से–उसमे खाई, खन्दक आदि युद्धोपयोगी किले-बन्दी कर देने से और जगह-जगह तोपे लगा देने से बहुत ही उत्तम गढ़ तैयार हो सकता है। तुम घर जाकर रहो, क्रमश: दो हजार संतान वहां जाकर उपस्थिति होगे। उन लोगों के द्वारा खाई-खन्दक प्राचीर आदि तैयार कराते रहो। वहां तुम्हे एक लौह-कक्ष बनवाना होगा; वही संतानो का अर्थ-भण्डार होगा। मै एक-एक कर सोने से भरे हुए संदूक तुम्हारे पास भेजवाऊंगा। तुम उसी धनराशि से यह सब तैयार कराओ। मै परदेश जाता हूं। वहां से उत्तम कारीगर भेजूंगा। उनके आ जाने पर तुम पदचिन्ह मे कारखाना स्थापित करो। वहां तोपें, गोले, बारूद, बन्दूक आदि निर्माण कराओ। इसीलिए मै तुम्हे घर जाने को कहता हूं।...''

महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया।

पैर छूकर महेन्द्र के विदा होने पर, उनके संग उसी दिन जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने उसे आशीर्वाद देकर बैठाया। इधर-उधर की मीठी बाते होने के बाद स्वामीजी ने कहा- ''क्योजी, भगवान कृष्ण मे तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नही !''

शिष्य ने कहा- ''कैसे बताऊं? मै जिसे भक्ति समझता हूं, शायद वह भंडैती या आत्मप्रतारणा हो !''

सत्यानन्द ने सन्तुष्ट होकर कहा- ''ठीक है, जिससे दिन-प्रतिदिन भक्ति का विकास हो, ऐसी ही कोशिश करना। मै आशीर्वाद देता हूं, तुम्हारी साधना सफल हो ! कारण तुम अभी उम्र मे बहुत युवा हो। वत्स ! क्या कहकर बुलाऊं- अब तक मैने पूछा नही।''

नवसन्तान ने कहा- ''आपकी जो अभिरुचि हो ! मै तो वैष्णवो का दासानुदास हूं।''

सत्यानन्द- ''तुम्हारी नई उम्र देखकर तुम्हे नवीनानन्द बुलाने की इच्छा होती है, अत: तुम अपना यही नाम रखो ! लेकिन एक बात पूछता हूं, तुम्हारा पहले क्या नाम था? यदि बताने मे कोई बाधा हो, तब भी बता देना। मुझसे कहने पर बात दूसरे कान मे न पहुंचेगी। सन्तानधर्म का मर्म यही है कि जो अवाच्य भी हो, उसे भी गुरू से कह देना चाहिए। कहने मे कोई हानि न होगी।''

शिष्य- ''मेरा नाम शान्ति देव शर्मा है।''

सत्यानन्द- ''तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।''

यह कहकर सत्यानन्द ने शिष्य की डेढ़ हाथ लम्बी काली-काली दाढ़ी को बांए हाथ से पकड़कर खीच लिया, नकली दाढ़ी अलग हो गयी। सत्यानन्द ने कहा- ''छि: बेटी ! मेरी साथ ठगी? - और मुझे ही ठगना था तो इस उम्र मे डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यो? और दाढ़ी तो दाढ़ी, यह कण्ठ का स्वर- यह आंखों की कोमल दृष्टि छिपा सकती हो? मै यदि ऐसा ही निर्बोध होता तो क्या इतने बड़े काम मे कभी हाथ डालता?''

बेशर्म शान्ति कुछ देर तक अपनी आंखो को हाथ से ढांके बैठी रही। इसके बाद ही उसने हाथ हटाकर वृद्ध पर मोहक तिरछी चितवन डालकर कहा- ''प्रभु ! तो इसमें दोष ही क्या है? स्त्री के बाहुओ मे क्या बल नही रहता?''

सत्यानन्द- ''गोष्पद मे जितना जल होता है !''

शान्ति- ''सब सन्तानो के बाहुबल की परीक्षा कभी आपने की है?''

सत्यानन्द- ''की है।''

यह कहकर सत्यानन्द एक इस्पात का धनुष और लोहे का थोड़ा तार ले आये। उसे शांति को देते हुए उन्होने कहा- ''इसी इस्पात के धनुष पर लोहे के तार की डोरी चढ़ानी होगी। प्रत्यंचा का परिणाम दो हाथ है। डोरी चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है और चढ़ानेवाले को दूर फेक देता है। जो इसे चढ़ा सकता है, वही वास्तव में बलवान है।''

शांति ने धनुष और तार को अच्छी तरह देखकर पूछा- ''सभी संतान क्या इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए है !''

सत्यानन्द- ''नही, इसके द्वारा केवल उन लोगो के बल की थाह ले ली है।''

शांति- ''क्या कोई भी इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हो नही सका?''

सत्यानंद- ''केवल चार व्यक्ति।''

शान्ति- ''क्या मै पूछ सकती हूं कि वे कौन-कौन है?''

सत्यानंद- ''हां, कोई निषेध नही है- एक तो मै स्वयं हूं।''

शांति- ''और?''

सत्यानंद- ''जीवानन्द, भवानंद और ज्ञानानन्द।'' शांति ने धनुष और तार लिया; एक झटके मे उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसने धनुष सत्यानंद के पैरों पर फेक दिया।

सत्यानंद विस्मित और स्तंभित हुए खड़े रह गये। कुछ देर बाद बोले- ''यह क्या! तुम देवी हो या दानवी।''

शांति ने हाथ जोड़कर कहा- ''मै सामान्य मानवी हूं, लेकिन ब्रह्मचारिणी हूं।''

सत्यानंद- ''इससे क्या हुआ! तुम क्या बाल विधवा हो? नही, लेकिन बाल- विधवा मे भी इतना बल नही होता, वह तो एकाहारी होती है।''

शांति- ''मै सधवा हूं।''

सत्यानन्द- ''तो क्या तुम्हारे स्वामी का पता नही है- निरूदिष्ट है?''

शांति- ''नही, उनका पता है; उन्ही के उद्देश्य से मै यहां आयी हूं।''

मेघ हटकर सहसा निकल आनेवाली धूप की तरह सत्यानंद की स्मृति जाग पड़ी है। उन्होने कहा- ''याद आ गया। जीवानंद की पत्नी का नाम शांति है। तुम क्या जीवानन्द की ब्राह्मणी हो? अब शांति शरमा गयी। उसने अपनी जटा से मुंह ढांक लिया मानो कितने ही हाथियो के झुण्ड पद्म पर घिर गये हो। सत्यानन्द ने पूछा - ''क्यो तुम यह पापाचार करने आयी?

सहसा शान्ति ने चेहरे पर से जटाएं हटाते हुए कहा- ''इसमे पापाचरण क्या है,प्रभु? पत्नी यदि पति का अनुसरण करे, तो यह पापाचरण कैसे है। संतान धर्मशास्त्र मे यदि इसे पापाचार कहते है तो सन्तान धर्म अधर्म है। मै उनकी सहधर्मिणी हूं। वे धर्माचरण मे प्रवृत्त है, मै भी उनके साथ धर्माचरण मे सहयोग देने के लिए ही आयी हूं।

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुनकर,उन्नत ग्रीव स्फीतवक्ष, कम्पित अधर तथा उज्ज्वल फिर भी आंसू भरी आंखें देखकर सत्यानन्द बहुत प्रसन्न हुए; बोले-''तुम साध्वी हो; लेकिन देखो बेटी- पत्नी केवल गृहधर्म मे ही सहधर्मिणी होती है- वीर-धर्म मे रमणी क्या सहयोग करेगी?''

शान्ति- ''कौन अपत्नीक होकर आज तक महावीर हो सका है? सीता के न रहते क्या रामवीर हो सकते? अर्जुन के कितने विवाह हुए थे, जरा गिनिये तो? भीम को जितना बल था, उतनी ही क्या उनकी पत्नियां नही थी? कितना गिनाऊँ? फिर क्या आपको बताने की जरूरत है?''

सत्यानन्द-''बात ठीक है, लेकिन रणक्षेत्र मे कौन वीर अपनी पत्नी को संग लेते है?''

शान्ति- ''अर्जुन ने जब दानवी सेना के साथ अन्तरिक्ष मे युद्ध किया था, तो उनके रथ को कौन चला रहा था? द्रौपदी के संग न रहते क्या पाण्डव कभी कुरुक्षेत्र मे जूझ सकते थे?''

सत्यानन्द-''वह हो सकता हे, लेकिन सामान्य मनुष्यो का हृदय स्त्रियो मे आसक्त रहता है और वही उन्हे कार्य से विरत करता है। इसीलिए सन्तानो का यह व्रत है कि वे कभी स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेगे। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। क्या तुम मेरा दाहिना हाथ काट देने के लिए आयी हो?

शान्ति- ''मै आपके हाथ मे बल बढ़ाने के लिए आयी हूं। मै ब्रह्मचारिणी हूं, और प्रभु के समीप ब्रह्मचारिणी ही रहूंगी। मै केवल धर्माचरण के लिए आयी हूं, स्वामी-दर्शन के लिए नही- विरह यंत्रणा से मै कातर नही हूं। पतिदेव ने जो धर्म ग्रहण किया है, मै उसकी भागिनी क्यो न बनूं? इसीलिये आयी हूं।''

सत्यानन्द- ''अच्छा तो कुछ दिन तुम्हारी परीक्षा करके देखूंगा।''

शान्ति बोली- ''क्या मै आनन्द मठ मे रह सकूंगी?''

सत्यानन्द-''आज और कहां जाओगी?''

शान्ति- ''इसके बाद?''

सत्यानन्द- ''मां भवानी की तरह तुम्हारे ललाट पर अग्नि तेज है, सन्तान सम्प्रदाय को क्यो भस्म करोगी?''
इसके बाद आशीर्वाद देकर सत्यानन्द ने शांति को विदा किया।
शांति मन ही मन बोली-''रहो बूढ़े भगवान! मेरे कपाल मे आग है? मै मुंहजली हूं कि तेरी दादी मुंहजली है?
वस्तुत: सत्यानन्द का वह अभिप्राय नही था- आंखो के विद्युत प्रकाश से ही उनका मतलब था लेकिन यह बात क्या बुड्ढो को युवतियो से कहनी चाहिये?

उस रात शांति को मठ मे रहने की अनुमति मिली थी, इसीलिए वह कमरा खोजने लगी। अनेक कमरे खाली पड़े हुए थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था- वह भी छोटी पदवी का सन्तान था- वह हाथ मे प्रदीप लिये हुए शांति को कमरे दिखाने लगा। कोई कमरा शांति को पसन्द न आया। हताश होकर गोवर्द्धन शांति को सत्यानन्द के पास वापस ले जाने लगा। शांति बोली- भाई सन्तान! इधर की तरफ जो कई कमरे है, उन्हे तो नही देखा गया!''
गोवर्द्धन बोला- वह सब कमरे है तो अवश्य बहुत सुन्दर किन्तु उनमे सन्तान लोग है।''
शांति- उसमे कौन कौन है?''
गोवर्द्धन- बड़े बड़े सेनापति है।''
शाति- बड़े बड़े सेनापति वे सेनापति कौन है?''
गोवर्द्धन- भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द- आनन्द मठ आनन्दमय है!''
शांति- चलो न, जरा वे कमरे देख आएं।''
गोवर्द्धन पहले शांति को धीरानन्द के कमरे मे ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे- अभिमन्यु ने किस तरह सप्तमहारथियो के साथ युद्ध किया था, इसी मे उनका चित्त निविष्ट था। वे कुछ न बोले। शांति बिना कुछ बोले-चाले आगे बढ़ गयी।
इसके बाद शांति ने भवानन्द के कमरे मे प्रवेश किया। उस समय भवानन्द उर्ध्वदृष्टि किये किसी के चेहरे की याद मे तल्लीन थे। किसका चेहरा, यह नही जानते, लेकिन चेहरा बड़ा सुन्दर है- कृष्ण-कुंचित सुगन्धित अलकराशि आकर्णप्रसारी भ्रूयुग के ऊपर पड़ी हुई है, मध्य मे अनद्य त्रिकोण ललाट देश है, उस पर मृत्यु की कराल कालछाया ग्रहण की तरह जान पड़ती है- मानो वहां मृत्यु और मृत्युंजय में द्वन्द्व हो रहा हो! नयन मूंदे हुए, भौहे स्थिर, ओठ नीले, गाल पीले, नाक शीतल, वक्ष उन्नत, वायु कपड़े को हिला रही है। इसके बाद ही जैसे शरतमेघ मे विलुप्त चन्द्रमा क्रमश: मेघदल को अतिक्रम कर अपना सौदर्य विकसित करता है; जैसे प्रभात का सूर्य तरंगाकृति मेघमाला को क्रमश: सुवर्णरंग से रंजित कर स्वयं प्रदीप्त होता है, दिग्मण्डल को आलोकित करता है, स्थल, जल, कीट-पतंग सबको प्रफुल्ल करता है- वैसे ही उस शांत देह मे आनंदमयी शोभा का संचार हो रहा था। आह! कैसी अनुपम शोभा थी! भवानन्द यही ध्यान कर रहे थे, अत: उन्होंने भी कोई बात न कही। कल्याणी के रूप से उनका हृदय कातर हो गया था, शांति के रूप की तरफ उन्होने ध्यान ही न दिया।
इसके उपरांत शांति तीसरे कमरे मे गई। उसने पूछा-''यह किसका कमरा है?''
गोवर्द्धन बोला-''जीवानंद स्वामी का।''
शांति-''यहां कौन है? कहां, इस कमरे मे तो कोई नही है।''
गोवर्द्धन-''कही गए होगे, अभी आ जाएंगे।''

शांति–''यह कमरा सब कमरो से उत्तम है।''

गोवर्द्धन–''भला यह कमरा ऐसा न होगा!''

शांति–''क्यो?''

गोवर्द्धन– ''जीवानंद स्वामी इसमे रहते है न!''

शांति–''मै इसी मे रह जाती हूं, वह कोई दूसरा कमरा खोज लेगे।''

गोवर्द्धन–''भला ऐसा भी हो सकता है? जो इस कमरे मे रहते है, उन्हे चाहे मालिक समझिये, या जो चाहे समझिए– जो कहते है, वही होता है।''

शांति–''अच्छा तुम जाओ, मुझे यदि जगह न मिलेगी तो पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी!''

यह कहकर गोवर्द्धन को बिदा कर शांति उसी कमरे मे घुसी! कमरे मे घुसकर शांति जीवानंद का कृशणाजिन बिछाकर और दीपक तेज कर उनकी रखी एक किताब पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद जीवानंद उपस्थित हुए! शांति का यद्यपि पुरुष वेश था, फिर भी उन्होने आते ही पहचान लिया, बोले–''यह क्या? शांति?''

शांति न धीरे–धीरे पुस्तक रखकर जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा–''महाशय! शांति कौन है?''

जीवानंद भैचक्के से रह गए, अंत मे बोले–''शांति कौन है? क्यो, क्या तुम शांति नही हो?''

शांति उपेक्षा के साथ बोली–''शांति कौन है? क्यो, क्या तुम शांति नही हो?''

शांति उपेक्षा के साथ बोली– ''मै नवीनानंद स्वामी हूं।''

यह कहकर वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानंद खखाकर हंस पड़े, बोले–''यह नया तमाशा बढ़िया है! अच्छा श्री श्री नवीनानंद जी! क्या सोचकर यहां पहुंच गए?''

शांति बोली–''यह नया तमाशा बढ़िया है! अच्छा भले आदमियो मे रिवाज है कि पहली मुलाकात मे 'आप' –'श्रीमान' –'महाशय' आदि शब्दो से संबोधन करना चाहिए। मै भी आपसे असम्मान–जनक रूप मे बाते नही करता हुं। तब आप मुझे 'तुम–तुम' क्यो कहते है?''

''जो आज्ञा'' –कहकर गले मे कपड़ा डालकर हाथ जोड़कर जीवानंद ने कहा– ''अब विनीत भाव से भृत्व का निवेदन है, कि किस कारण भैरवीपुर से इस दीन–भवन मे महाशय का शुभागमन हुआ है? आज्ञा किजिए!''

शांति ने अति गंभीर भाव से कहा–''व्यंग्य की कोई आवश्यकता नही है। मै भैरवीपुर को पहचानता ही नही। मै संतानधर्म ग्रहण करने के लिए आज आकर दीक्षित हुआ हूं।''

जीवानंद–''अरे सर्वनाश! क्या सचमुच?''

शांति–''सर्वनाश क्यो? आप भी तो दीक्षित है!''

जीवानंद–''तुम तो स्त्री हो!''

शांति–''यह कैसे? ऐसी बात आपने कैसे सुनी?''

जीवानंद–''मेरा विश्वास था कि मेरी ब्राह्मणी? स्त्री है।?''

शांति–''ब्रह्मणी? है या नही?''

जीवानंद–''थी तो जरूर!''

शांति–''आपको विश्वास है कि मै आपकी ब्राह्मणी हूं?''

जीवानंद ने फिर गले मे कपड़ा डालकर बड़े ही विनीत भाव से कहा–''अवश्य महाशयजी!''

शांति-''यदि ऐसी मजाक की बात आपके मन मे है, तो सही, आपका कर्तव्य क्या है?''

जीवानंद-''आपके शरीर के कपड़ो को बलपूर्वक हटा देने के बाद अधर-सुधापान!''

शांति-''यह आपकी दृष्ट-बुद्धि है, या मेरे प्रति असाधारण भक्ति का परिचय मात्र है! आपने दीक्षा के अवसर पर शपथ ली है कि स्त्री के साथ एकासन पर कभी न बैठूंगा। यदि आपका यह विश्वास हो कि मै स्त्री हूं-ऐसा सर्प-रज्जु भ्रम अनेक को होता है- तो आपके लिए उचित यही है कि अलग आसन पर बैठे। मुझसे तो आपको बात भी नही करनी चाहिए!''

यह कहकर शांति ने फिर पुस्तक पाठ मे मन लगाया। अंत मे परास्त होकर जीवानंद पृथक शय्या-रचना कर लेट गए।

भगवान की अनुकंपा से 76 वे बंगाब्द का अकाल समाप्त हो गया। बंगाल प्रदेश के छः आना मनुष्यो को-नही कह सकते, कितने कोटि-यमपुरी को भेजकर वह दुर्वत्सर स्वयं काल के गाल मे समा गया। 77वे वर्ष मे ईश्वर प्रसन्न हुए। सुवृष्टि हुई, पृथ्वी शस्यश्यामला हुई; जो लोग बचे थे, उन्होने पेट भरकर भोजन किया। अनेक अनाहार या अल्पाहार से बीमार पड़ गए थे, पूरा आहार सह नही सके। बहुतेरे इसी मे मरे। पृथ्वी तो शस्यश्यामलिनि हुई, लेकिन जनशून्या हो गयी। बंगाल प्रदेश जंगलो से भर गया। जहां हंसती हुई हरियाली भूमि थी, जहां असंख्या गो-महिषो की चरने की भूमि थी, जो गांव की भूमि युवक-युवतियो की प्रमोद-भूमि थी-वह सब महारण्य मे परिणत होने लगी। इसी तरह एक वर्ष गया, दो वर्ष गए, तीन वर्ष गए। जंगल बढ़ते ही जाते थे। जो मनुष्यो के सुख के स्थान थे, वहां हिंसक शेर आदि पशु आकर हरिणो पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणो से पायजेब आदि पशु आकर हरिणो पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणो से पायजेब आदि की झनकार करती हुई, वृद्धाओ के साथ व्यंग करती हुई, हंसती हुई गुजरा करती थी, वही अब भालुओं ने अपने बच्चो को लालन-पालन शुरू किया है। जहां छोटी उम्र के बालक सांयकाल के समय जुटकर, फूले हुए पुष्प जैसा हृदय लेकर मनमोहक हंसी से स्थान गुंजया करते थे, अब वहां श्रृंगालो के विवर है। नाट्यमंदिरो मे दिन के समय सर्पराजो की भयंकर फुफकार सुनाई पड़ती है। अब बंगाल मे अन्न होता है; लेकिन कोई खाने वाला नही है। बिक्री के लिए पैदा करते है, लेकिन कोई खरीददार नही है। कृषक अनाज पैदा करते है, पर पैसे नही मिलते। जमीदार को वे लगान दे नही सकते। राजा के जमीदारी छीन लेने पर जमीदार सर्वह्रत होकर दरिद्र हो गए। वसुमती के बहु-प्रसविनी होने पर भी जनता कंगाल हो गयी। चोर-डाकुओ ने माथा उठाया और साधु पुरुषो ने घर मे मुंह छिपाया।

इधर संतान-संप्रदाय नित्य चंदन-तुलसी से विष्णु-पादपद्मो की पूजा करने लगा। जिनके घर मे पिस्तौल-बंदूके थी, संतानगण उससे वह छीन लाए। भवानंद ने सहयोग्यियो से कह दिया था-''भाई! यदि किसी घर मे मणि-माणिक्य गंजा हो और एक टूटी हुई बंदूक भी हो, तो बंदूक ले आना, धन-रत्न छोड़ देना।''

इसके बाद ये लोग गांव-गांव मे अपने गुप्तचर भेजने लगे। पर लोग जहां हिंदू होते थे, कहते थे ''भाई! विष्णु-पुजा करोगे!'' इसी तरह बीस-पचीस संतान किसी मुसलमान बसती मे पहुंच जाते और उनके घर मे आग लगा देते थे; उनका सर्वस्व लूटकर हिंदू विष्णु-पुजको मे उसे वितरित कर देते थे। लूट का भाग पाने पर लोगो के प्रसन्न होने पर उन्हे संतानगण मंदिर मे लाकर विष्णुचरणो पर शपथ खिलाकर संतान बना लेते थे। लोगो ने देखा कि संतान होने मे बड़ा लाभ है। विशेषत: मुसलमानो राजत्वकाल मे उनकी अराजकता और कुशासन से लोग ऊब उठे थे। हिंदू धर्म की विलोपावस्था के समय अनेक हिंदू अपने देश मे हिंदुत्व-स्थापन के लिए व्यग्र हो रहे थे। अत: दिन-प्रतिदिन संतानो की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सौ-सौ, मास मे हजार-हजार की संख्या मे ग्रामीण लोग संतान बनाकर उनकी संख्या वृद्धि कर मुसलमानो को शासन से विरत करने

लगे। जीवानंद और भवानंद के पदपद्मो मे प्रणाम कर संतानो की संख्या अनंत होने लगी। जहां वे लोग राजपुरुषो को पाते थे, अच्छी तरह मरम्मत करते थे, मुसलमानो के गांव भस्म कर राख बनाए जाने लगे। स्थानीय मुसलमान नवाब यह सुनकर दल–के–दल सैनिको को इनके दमन के लिए भेजते थे; लेकिन उस समय तक संतान गण दलबद्ध, शस्त्रयुक्त और महादंभशाली हो गए थे। उनके तेज के आगे मुसलिम फौज अग्रसर हो न पाती थी; यदि आगे बढ़ती थी तो अमित संख्या मे संतान–सैन्य उस पर आक्रमण कर उनको धुनकी हुई रुई की तरह उड़ा देती थी। कभी कोई दल यदि परास्त होता या, तो तुरंत दूसरा बड़ा दल आकर उस मुस्लिम फौज का सर उड़ा देता था और मत होकर हरिनाम का जयघोष करता, नाचता गायब हो जाता था। उस समय लब्धप्रतिष्ठ अंगरेज कुल के प्रात: सूर्य वारेन हेस्टिंग्स भारतवर्ष के गवर्नर–जनरल थे। कलकत्ते मे बैठे हुए वे राजनीतिक शृंखला की कड़ियां गिन रहे थे कि इसी से वे समूचे भारत को बांध लेगे। एक दिन भगवान ने भी सिंहासन पर बैठकर नि:संदेह कहा था– तथास्तु! लेकिन वह दिन अभी दूर था। आजकल तो संतानो की दिगंत–व्यापिनी हरिध्वनि से वारेन हेस्टिंग्स भी कांप उठे थे।

हेस्टिंग्स साहब ने पहले तो देशी फौज से विद्रोह दबाने की चेष्टा की थी। लेकिन उन देशी सिपाहियो की यह दशा हुई कि वे लोग एक बुड्ढी औरत के मुंह से भी यदि हरिनाम सुन पाते थे, तो भागते थे, अंत मे निरूपाया होकर वारेन हेस्टिंग्स ने कप्तान टॉमस नामक एक सुदक्ष सेनापति के अधिनायकत्व मे थोड़ी गोरी फौज भेजकर विद्रोह–दमन का यत्न किया।

कप्तान टॉमस विद्रोह– निवारण के लिए बहुत ही उत्तम उपाय करने लगे। उन्होने अपनी गोरी पल्टन के साथ नवाब की सेना और जमीदारो के आदमी मिलाकर एक अत्यंत बलिष्ठ सेना तैयार कर ली। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्य के टुकड़े–टुकड़े कर उपयुक्त नायको के हाथ मे उन्होने सौप दिया। साथ ही उन लोगो को छोटे–छोटे निश्चित अंचलों मे विभक्त कर दिया; कह दिया कि जहां संतानो को पाओ, पशु की तरह मारो और हंकाओ। गोरी सैन्य दम्भ की बोतल छान संगीन चढ़ाकर हुई। लेकिन टॉमस की सेना, जैसे खेती काटी जाती है, वैसे ही काटी जाने लगी। हरिध्वनि से टॉमस के कान बहरे हो गए; क्योकि उस समय संतान असंख्य थे और प्रदेश भर मे फैले हुए थे।

कम्पनी की उस समय अनेक कोठियां थी। ऐसी ही एक कोठी शिवग्राम मे थी। डांनीवर्थ साहब इस कोठी के अध्यक्ष थे। उस समय रेशम–कोठी की रक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध हुआ करता था।

डॉनीवर्थ ने इसी वजह से किसी तरह अपनी प्राणरक्षा की। लेकिन अपनी स्त्री–कन्या को कलकत्ता भेज देने के लिए उन्हे बाध्य होना पड़ा था; कारण–डॉनीवर्थ सन्तानो द्वारा बहुत ही पीड़ित हुए थे। उसी समय टॉमस साहब थोड़ी फौज लेकर उस अंचल मे पहुंच गये। उस समय कितने ही डोम,चमार,लंगड़े–लूले भी पराया धन लूटने के लिए उत्साहित हो गये थे। उन सबो ने जाकर कप्तान टॉमस की रसद पर आक्रमण किया। कप्तान साहब बहुत अधिक मात्रा मे खाद्य–सामग्री– घी, मैदा, सूजी, चावल गाड़ियो पर लदवाकर ले आ रहे थे। इसे देखकर डोम–चमारो का दल अपना लोभ संवरण कर न सका– उन सबने जाकर गाड़ी पर आक्रमण किया; लेकिन सिपाहियो की दो–चार संगीने खाकर सब भागे।

कप्तान टॉमस ने उसी समय कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज कुल 1५7 (एक सौ संतावन)सिपाहियो को लेकर मैंने 14730 विद्रोहियो को परास्त किया है। विद्रोहियों के 21५3 (इक्कीस सौ तिरेपन) व्यक्ति मरे, 1223 घायल हुए और 7 व्यक्ति बन्दी हुए। केवल अन्तिम संख्या सत्य थी। कप्तान टॉमस ने द्वितीय ब्लेनहम या रसवाक का युद्ध जीता– यह सोचते हुए वे अपनी मूछो पर ताव देते हुए इधर–उधर ठाट से घूमने लगे। उन्होने डॉनीवर्थ से कहा– ''अब क्या डरते हो? बस, विद्रोहियो का दमन हो गया! अब अपनी स्त्री–कन्या का कलकत्ते से बुला

लो।''

इस पर डॉनीवर्थ ने उत्तर दिया- ''ऐसा ही होगा! आप दस दिन यहां ठहरिये, देश को जरा और शांत होने दीजिये, फिर बुला लेगे।''

डॉनीवर्थ के पास पल्टन की मुर्गियाँ पली हुई थी और उनके यहां का पानी भी बहुत अच्छा था। विभिन्न वन्यपक्षी उनके टेबुल की शोभा बढ़ाते थे। दाढ़ीवाला बावर्ची मानो द्वितीय द्रौपदी था। अत: बिना कुछ बोले-चाले कप्तान टॉमस वही डटे रहने लगे।

इधर भवानंद मन ही मन व्यस्त है कि कब इस कप्तान का सर काटकर द्वितीय शम्बरारि की उपाधि धारण करूं। अंग्रेज इस समय भारतोद्वार के लिए(?) आये है, ये संतानगण तब तक समझ न सके थे। कैसे समझते? कप्तान टॉमस के सम-सामयिक भी उस समय यह न समझ सके थे कि भारतवर्ष पर हमारा राज्य स्थापित हो सकेगा। उस समय भविष्य तो विधाता ही जानते थे! भवानंद मन मे सोचते थे कि इस असुर- वंश का एक दिन मे निपात करूंगा; सब एकचित हो जाएं और जरा असतर्क सन्तान लोग अलग रहे। यही विचारक सब अलग रहे। उधर कप्तान टॉमस द्रौपदी गुण-ग्रहण मे संलग्न थे।

साहब बहादुर शिकार के बड़े शौकीन थे। वे कभी-कभी शिवग्राम के निकट के जंगल मे शिकार खेलने निकल जाते थे। एक दिन डॉनीवर्थ के साथ अनेक शिकारियो को लेकर टॉमस शिकार के लिए निकल पड़े। कहना ही क्या है! टॉमस बड़े ही साहसी व्यक्ति है, बल-वीर्य मे अंगरेजो मे अतुलनीय है। इस जंगल मे शेर, भालू आदि हिंसक जन्तुओ का बाहुल्य है। बहुत दूर निकल जानेपर साथ के शिकारियो ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया कि निविड़ जंगल मे हम न घुसेगे; वे बोले- ''अब भीतर राह नहीं है, आगे जा न सकेंगे।'' डानीवर्थ भी ऐसे भयानक शेर के सामने पड़ चुके थे कि वे भी घुसने से मुकर गये। सब लोग लौटना चाहते थे। कप्तान टॉमस ने कहा- ''तुम लोग लौट जाओ, मै न लौटूंगा।'' यह कहकर कप्तान साहब ने भयानक जंगल मे प्रवेश किया। वस्तुत: उस जंगल मे राह न थी। घोड़ा आगे बढ़ न सकता था: लेकिन साहब ने अपना घोड़ा भी छोड़ दिया और कन्धे पर बन्दूक रखकर पांव पैदल आगे बढ़े। घने जंगल मे प्रवेश कर इधर उधर शेर की खोज करने लगे; पर शेर कही न था। फिर देखा क्या- एक बड़े पेड़ के नीचे, खिले पुष्पो की लता अपने शरीर से लपेटे हुए कौन बैठा हुआ था? एक नवीन संन्यासी बैठा अपने रूप से जंगल मे उजाला किये हुए है। प्रस्फुटित पुष्प मानो उस शरीर का सानिध्य पाकर कुछ अधिक सुगन्धित हो गये है। कप्तान टॉमस को पहले तो विस्मय हुआ, फिर क्रोध आया। कप्तान साहब थोड़ी बहुत हिन्दी बोल लेते थे,बोले-''टुम कौन?''

संन्यासी ने कहा- ''मै संन्यासी हूं।''

कप्तान ने कहा - ''टुम रिबेल है?

संन्यासी- ''वह क्या?

कप्तान-''हम टुमको गुली करके माड़ेगा।''

सन्यासी-''मारो।''

कप्तान जरा मन मे आगा-पीछा कर रहे थे कि गोली मारे या न मारे; इसी समय विद्युत वेग से संन्यासी ने आक्रमण कर उनकी बन्दूक छीन ली। संन्यासी ने अपना वक्षावरण चर्म खोलकर फेंक दिया। एक झटके मे जटा अलग हो गयी। कप्तान टॉमस ने देखा कि उसके सामने अपूर्व स्त्री-मूर्ति है। सुन्दरी ने हंसते-हंसते कहा- ''साहब! हम लोग नारी है, किसी को चोट नही पहुंचाती। मै तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं कि जब हिन्दू-मुसलमानो मे लड़ाई हो रही है, तो इस बीच मे तुम लोग क्यो बोलते हो? अपने घर लौट जाओ!''

साहब- ''कौन हो तुम?''

शान्ति–''देखते तो हो, संन्यासिनी हूं–जिन लोगो से लड़ने आये हो, मै उन्ही मे से एक स्त्री हूं।''

साहब– ''टुम हमाड़ा घड़ मे रहेगा?''

शान्ति–''क्या तुम्हारी उपपत्नी बनकर?''

साहब–''इसी माफक रहने सकता; शादी नही करेगा।''

शान्ति– ''मुझे भी एक बात पूछनी है, हमारे घर मे एक सुन्दर बन्दर था,वह हाल मे ही मर गया है– उसकी जगह खाली पड़ी है। कमरे मे सिकड़ी डाल दूंगी। तुम उस दरबे मे रहोगे? हमारे बगीचे मे खूब केला होता है।''

साहब–'' तुम बड़ी स्प्रिटेड वूमेन है। टुमारी करेज पर हाम खुशी है। टुम हमाड़ा घड़ मे चलो। टुमाड़ा आदमी लड़ाई मे मड़ेगा,टब टुम क्या कड़ेगा?

शान्ति–'' तब हमारी एक शर्त हो जाए। युद्ध तो दो–चार दिन मे होगा ही। अगर तुम जीतोगे, तो मै तुम्हारी उपपत्नी होकर रहूंगी। अगर हम लोग जीतेगे, तो तुम हमारे घर मे उसी दरबे मे बन्दर बनकर रहना और केला खाना।''

साहब–''केला बहुत अच्छा चीज । अभी तुम्हारे पास है?''

शान्ति– ''ले अपनी बन्दूक ले! ऐसे बेवकूफो के साथ कौन बात करे!''

यह कहकर शान्ति बन्दूक फेककर हंसती हुई भाग गयी।

साहब के पास से भागकर शान्ति जंगल मे गायब हो गयी। थोड़ी ही देर बाद साहब ने मधुर स्त्री–कण्ठ से गाना सुना–

''ए यौवन–जल तरंग रोघिबे के
हरे मुरारे! हरे मुरारे!''

इसके साथ ही सारंगी पर वही मधुर झनकार उठी– ''ए यौवन–जल तरंग रोघिबे के?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!''

इसके साथ ही पुरुष कण्ठ के साथ फिर गाना हुआ–''ए यौवन–जल तरंग रोघिबे को?
हरे मुरारे! हरे मुरारे!''

तीन स्वरो की मिलित झनकार ने जंगल की समूची लताओ को कंपा दिया। शान्ति गाती हुई गीत के पूरे चरण गाने लगी–

''ए यौवन जल– तरंग रोघिबे के?
''हरे मुरारे! हरे मुरारे!''
''ए यौवन जल– तरंग रोघिबे के?
''हरे मुरारे! हरे मुरारे!
जलते तूफान होये छे
आमार नूतन तरी मसिलो सुखे,
माझीते हाल धरे छे,
हरे मुरारे! हरे मुरारे!
मेगे बालिरे बांध, पुराई मनेर साध,
जोरदार गांगे जल छूटे छे, राखिबे के?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे!''
सारंगी भी बज रही थी-''
जोरदार गांगेजल छूटे छे, राखिबे के ?
हरे मुरारे! हरे मुरारे।

जहां बहुत ही घना जंगल है- भीतर क्या है, बाहर से यह दिखाई नही देता, शांति उसी के अंदर प्रवेश कर गयी थी। वही उन्ही शाखा- पल्लवो मे छिपी हुई एक छोटी कुटी है। डालियो के ही बन्धन और पत्तो का छाजन है। काठ की जमीन, उस पर मिट्टी पटी हुई है। लताद्वार खोलकर उसी के अंदर शांति प्रवेश कर गयी। वहां जीवानंद बैठे सारंगी बजा रहे थे।

जीवानंद ने शांति को देखकर पूछा- ''इतने दिनो के बाद गंगा मे ज्वार का जल बढ़ा है क्या?''

शांति ने हंसते हुए उत्तर दिया- ''ज्वार का बढ़ा हुआ गंगा जल ही क्या तालो को डुबाता है?''

जीवानंद ने दु:खी होकर कहा- ''देखो, शांति! एक दिन तो व्रत भंग होने के कारण प्राण उत्सर्ग करूंगा ही; जो पाप हुआ है, उसका प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। अब तक प्रायश्चित कर चुका होता, किन्तु केवल तुम्हारे अनुरोध के कारण कर न सका। लेकिन अब किसी दिन यह भी सम्भव हो जाएगा, विलम्ब नही है। उसी युद्ध मे मुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा। इस प्राण का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन..........

झ्ह्शांति ने बात काट कर कहा- ''मैं तुम्हारी धर्मपी हूं, सधर्मिणी हूं-धर्म मे सहायक हूं। तुमने अतिशय गुरु धर्म ग्रहण किया है, उसी धर्म की सहायता के लिए मै आई हूं। हम दोनो ही एक साथ रहकर उस धर्म मे सहायक होगे, इसलिए घर त्याग कर आयी हूं। मै तुम्हारे घर मे वृद्धि ही करूंगी। विवाह इहकाल के लिए भी होता है और परकाल के लिए भी होता है। इहकाल के लिए जो विवाह होता है, मन मे समझ लो कि हमने वह किया ही नही। हमलोगो का विवाह केवल परकाल के लिए हुआ है। परकाल मे इसका दूसरा फल होगा, लेकिन प्रायश्चित की बात क्यो? तुमने कौन सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेगे? कौन कहता है तुम किसी दिन भी एकासन पर बैठे हो? फिर प्रायश्चित क्यो? हाय प्रभु तुम मेरे गुरू हो, क्या मै तुम्हे धर्म सिखाऊं? तुम वीर हो, लेकिन क्या मै तुम्हे वीर-धर्म सिखाऊं?''

जीवानंद ने आह्लाद से गदगद होकर कहा-''प्रिये! सिखाओ तो सही!''

शांति प्रसन्नचित से कहने लगी-''और भी देखो गोस्वामी जी! इहकाल मे ही क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझसे प्रेम करते हो, मै तुमसे प्रेम करती हूं- इससे बढ़कर इहकाल मे और कौन-सा फल हो सकता है? बोलो-वन्देमातरम्!''

इसके बाद ही दोनो ने एक स्वर से ''वन्देमातरम्'' गीत गाया।

भवानंद स्वामी एक दिन नगर मे जा पहुंचे। उन्होने प्रशस्थ राजपथ त्यागकर एक गली मे प्रवेश किया। गली के दोनो बाजू ऊंची अट्टालिकाएं है, केवल दोपहर के समय एक बार वहां भगवान सूर्य झांक लेते है, इसके बाद अंधकार ही अंधकार। गली मे घुसकर पास के ही एक दो-मंजिले मकान मे भवानंद ने प्रवेश किया। नीचे की मंजिल मे जहां एक अर्धवयस्का स्त्री रसोई बना रही थी, वही जाकर भवानंद स्वामी ने दर्शन दिया। वह स्त्री अर्धवयस्क, मोटी-झोटी, काली-कलूटी, मैली धोती पहने माथे के बाल ठीक खोपड़ी पर बांधे हुए, दाल की बटलोही मे कलछी डालकर ठन-ठन बजाती हुई बाएं हाथ से मुंह पर लटकानेवाले बालो को हटाली, कुछ मुंह से बड़बड़ाती, रसोई करती हुई सुशोभित हो रही थी। ऐसे ही समय भवानंद महाप्रभु ने घर मे प्रवेश कर कहा- ''भाभी! राम-राम!''

भाभी भवानंद को देखकर अवाक होकर अपने हटे हुए कपड़े ठीक करने लगी। इच्छा हुई कि सिर का मोहन

जूड़ा खोल डाले, लेकिन खोल न सकी– हाथ मे कलछी थी। हाय हाय! उस जूड़े के जंजाल मे उसने एक बकुल पुष्प खोस रखा था। वस्त्रांचल से उसे ढंकने की कोशिश की, लेकिन यह क्या? आज तो एक पांच हाथ का टुकड़ा मात्र पहन रखा था। अत: अंग ढंक न सकी। वह पांच हाथ का कपड़ा ऊपर उठाती थी तो छाती खुलती थी, छाती ढांकती थे तो पीठ खुलती थी, लाचार बेचारी परेशान हो गई। किसी तरह उसने एक कोना खीचकर कान के पास तक लाकर आधा चेहरा ढांकने का भाव कर प्रतिज्ञा की कि दूसरी एक धोती खरीदूंगी और तब इसे कभी न पहनूंगी। इस तरह व्यस्त होने के बाद बोली–''कौन, गोसाई ठाकुर! आओ–आओ! लेकिन भाई! यह हमे राम–राम के साथ प्रणाम क्यो?''

भवानंद–''तुम मेरी भाभी जो हो!''

गौरी–''अच्छा, आदर से कहते हो तो कह लो। प्रणाम किया ही है, तो खुश रहो! फिर तुम्हे प्रणाम करना ही चाहिए, मै उम्र मे बड़ी जो हूं। लेकिन आखिर हो तो गोसाई ठाकुर देवता ही!''

भवानंद स्वामी से गौरी की उम्र काफी बड़ी–''करीब पचीस वर्ष बड़ी है। लेकिन चतुर भवानंद ने उत्तर दिया–''भाभी! अरे तुम्हे रसीली देखकर भाभी कहता हूं। नही तो हिसाब जब किया गया था, तो तुम मुझसे छः वर्ष छोटी निकली थी। क्या याद नही है? हम लोगो मे सब तरह के वैष्णव है न। इच्छा है कि एक मठधारी ब्रह्मचारी के साथ तुम्हारी सगाई करा दूं, यही कहने आया हूं।?''

गौरी–''यह कैसी बात? अरे राम–राम! ऐसी बात भला कही जाती? मै ठहरी विधवा औरत!''

भवानंद–''तो सगाई न होगी?''

गौरी–''तो भाई! जैसा समझो वैसा करो। तुम लोग पंडित आदमी ठहरे। हम लोग तो और है, क्या समझे? तो कब होगी सगाई?''

भवानंद ने बड़ी मुश्किल से हंसी रोककर कहा–''बास एक बार उस ब्रह्मचारी से मुलाकात होते ही पक्की हो जाएगी सगाई?''

गौरी जल गई। मन मे संदेह हुआ कि शायद सगाई की बात मजाक है। बोली–''है, जैसी, है वैसी है!''

भवानंद–''तुम जरा जाकर एक बार देख आओ। कह देना कि मै आया हू– एक बार मिलना चाहता हूं।''

इस पर गौरी भात–दाल छोड़कर हाथ धोकर छमछम करती हुई सीढ़ियां तोड़ती ऊपर चढ़ने लगी। एक कमरे मे जमीन पर चटाई बिछाकर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी हुई हैं। लेकिन सौदर्य पर एक घोर छाया है। मध्यान्ह के समय कलकलवाहिनी प्रसन्नसलिला, विपुल–जल–श्रोतवती नदी के ऊपर मेघ आने जैसी यह कैसी छाया है!

नदी–हृदय पर तरंगे उछल रही है, तटवर्ती कुसुमवृक्ष वायु के झोके मे मस्त झूम रहे है, पुष्प–भार से दबे जा रहे है, उनसे अट्टालिका–श्रेणी सुशोभित है। तरणी–श्रेणी के ताड़न से जल आंदोलित हो रहा है। यह भी वैसे ही पहले की तरह चारु, चिकने, चंचल, गुंथे केश, पहले का वैसा ही तेजपुंज ललाट और उस पर पतली तूलिका से खिंची हुई भौहे, वही पहले जैसे चंचल मृग–नयन– लेकिन वैसे कटाक्षमय नही, वैसी लोलता नही, कुछ नम्र! अधरो पर वही दाड़िम लालिमा, वैसे ही सुधारसपूर्ण, वैसे ही वनलता–दुष्प्राप्य कोमलतायुक्त बाहु। लेकिन आज वह दीप्ति नही, वह उज्ज्वलता नही, वह प्रखरता नही, वह चंचलता नही, वह रस नही है– शायद वह यौवन भी नही है। केवल सौन्दर्य और माधुर्यमात्र, नयी बात आ गयी है–गाम्भीर्य। इसे पहले देखने से जान पड़ता था कि मनुष्य–लोक की अतुलनीय सुन्दरी है अब देखने से जान पड़ता है कि कोई स्वर्ग की शापग्रस्त देवी है। उसके चारो तरफ दो–चार पुस्तके पड़ी हुई है। दीवार पर खूंटी के सहारे तुलसी की माला लटक रही है। दीवारो पर जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा, कालीयदमन, गोवर्धन–धारण आदि के चित्र टंगे हुए है। वे चित्र उसके स्वयं बनाये हुए है, उनके नीचे लिखा हुआ है–''चित्र या विचित्र!'' ऐसे ही कमरे मे भवानन्द ने

प्रवेश किया।

भवानन्द ने पूछा–''क्यो कल्याणी! शारीरिक कुशल तो है?''

कल्याणी–''यह प्रश्न करना आप न छोड़ेगे? मेरे शारीरिक कुशल से आपका क्या मतलब?''

भवानन्द–''जो वृक्ष लगाता है, उसमे नित्य जल देता है–वृक्ष के बढ़ते से ही उसे सुख होता है। तुम्हारे मृत शरीर मे मैने नवजीवन दिया है। वह बढ़ रहा है या नही, मै क्यो न पूछूंगा?''

कल्याणी–''विक्ष-वृक्ष का क्या कभी कोई दाम होता है?''

भवानन्द–''जीवन क्या विष है?''

कल्याणी–''न होता तो अमृत ढालकर मे उसे ध्वंस करने को क्यो तैयार होती?''

भवानन्द–''बहुत दिनो से सोच रहा था–पूछूंगा, लेकिन पूछ नही सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय बना दिया था?''

कल्याणी ने स्थिर भाव से उत्तर दिया–''मेरे जीवन को किसी ने विषमय नही बनाया : जीवन स्वयं विषमय है–मेरा जीवन विषमय है; आपका जीवन विषमय है : सभी का जीवन विषमय है।''

भवानन्द–''सच है, कल्याणी! मेरा जीवन तो अवश्य विषमय है।......उसी दिन से तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है?''

कल्याणी–''नही?''

भवानन्द–''फिर क्या बात है?''

कल्याणी–''अच्छा नही मालूम होता।''

भवानन्द–''विद्या-अर्जन मे तुम्हारी कुछ प्रवृत्ति देखी थी। अब ऐसी अश्रद्धा क्यो?''

कल्याणी–''आप जैसे पण्डित जब महापापिष्ठ है, तो न पढ़ना-लिखना ही अच्छा है। मेरे पतिदेव की क्या खबर है, प्रभु?''

भवानन्द–''बारंबार यह संवाद क्यो पूछती हो? वो तो तुम्हारे लिए मृत समान है।''

कल्याणी–''मैं उनके लिए मृत हूं; वे मेरे लिए नही।''

भवानन्द–''वह तुम्हारे लिये मृतवत् होंगे, यही समझकर तो तुमने विष खाया था? बार-बार यह बात क्यो कल्याणी?''

कल्याणी–''मर जाने से क्या संबंध मिट जाता है! वह कैसे है?''

भवानन्द–''अच्छे है।''

कल्याणी–''कहां है? पदचिन्ह मे?''

भवानन्द–''हां, वही है!''

कल्याणी–''क्या कर रहे है?''

भवानन्द–''जो कर रहे थे–दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण; उन्ही के द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्रो से सहस्त्रो सन्तान सज्जित हो रहे है। उन्ही की कृपा से अब हम लोगो को तोप, बन्दूक, गोला-गोली, बारूद आदि की कमी नही है। सन्तान गण मे वही श्रेष्ठ हैं। वे हम लोगो को महत् उपकार कर रहे है; वे हम लोगो के दाहिने हाथ है।''

कल्याणी–''मै प्राण-त्याग न करती, तो इतना होता! जिसकी छाती पर छेदही कलसी बंधी हो, वह क्या कभी भवसागर पार कर सकता है! जिसके पैरो मे लौह सीकड़ पड़े हो, वह क्या कभी दौड़ सकता है! क्यो संन्यासी! तुमने अपना क्षार जीवन क्यो बचा रखा था?''

भवानन्द–''स्त्री सहधर्मिणी होती है, धर्म मे सहायक होती है।''

कल्याणी–"छोटे-छोटे धर्मों मे। बड़े धर्मों के अनुसरण मे कण्टक! मैने विष–कटक द्वारा उनके अधर्म या कष्ट का उद्धार किया था। छिः, दुराचारी पामर ब्रह्मचारी! तुमने मेरे प्राण क्यो लौटाये?"

भवानन्द–"अच्छा, न तो मैने जो किया है, उसे मुझे वापस कर दो। मैने जो प्राण–दान किया है, क्या तुम उसे वापस कर सकती हो।"

कल्याणी–"क्या आपको पता है, मेरी सुकुमारी कैसी है?"

भवानन्द–"बहुत दिनो से उसकी खबर नही लगी। जीवानन्द बहुत दिनो से उधर गये ही नही।"

कल्याणी–"उसकी खबर क्या मुझे ला नही दे सकते? स्वामी मेरे लिए त्याज्य है; लेकिन जब जिन्दा रह गई हूं तो कन्या को क्यो त्याग दूं! अब तो सुकुमारी के पास जाने से ही जीवन मे कुछ सुख मिल सकता है। लेकिन मेरे लिए इतना आप क्यो करेगे।"

भवानन्द–"करूंगा कल्याणी! तुम्हारे लिए कन्या ला दूंगा; लेकिन इसके बाद?"

कल्याणी–"इसके बाद क्या गोस्वामी?"

भवानन्द–"स्वामी"

कल्याणी–"उन्हे तो इच्छापूर्वक त्यागा है।"

भवानन्द–"यदि उनका व्रत पूर्ण हो जाए तो?"

कल्याणी–"तो मै उनकी हूंगी। मै जो बच गई हूं, क्या वे यह जानते है?"

भवानन्द–"नही।"

कल्याणी–"आपसे क्या उनकी मुलाकात नही होती?"

भवानन्द–"होती है।"

कल्याणी–"मेरी बात कभी नही करते?"

भवानन्द–"नही! जो स्त्री मर गयी, उससे फिर पति का क्या सम्बन्ध!"

कल्याणी–"क्या कहा?"

भवानन्द–"तुम फिर विवाह कर सकती हो, तुम्हारे पुनर्जन्म हुआ है।"

कल्याणी–"मेरी कन्या ला दो!"

भवानन्द–"ला दूंगा! तुम फिर विवाह कर सकती हो?"

कल्याणी–"तुम्हारे साथ न?"

भवानन्द–"विवाह करोगी?"

कल्याणी–"तुम्हारे साथ"

भवानन्द–"यही मान लो।"

कल्याणी–"सन्तान धर्म कहां रहेगा?"

भवानन्द–"अतल जल मे।"

कल्याणी–"यह तुम्हारा महाव्रत है?"

भवानन्द–"अतल जल मे गया?"

कल्याणी–"किसलिए सब अतल जल मे डुबाते हो?"

भवानन्द–"तुम्हारे लिए! देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, सबका चित्त अवश्य होता है। सन्तान–धर्म मेरा प्राण है, लेकिन आज पहले–पहल करता हूं, तुम प्राणो से भी बढ़कर प्राण हो। जिस दिन तुम्हे प्राण–दान किया, उसी दिन से मै तुम्हारे पैरो पर गिर गया। मै नही जानता था कि संसार मे ऐसा रूप भी

है। ऐसी रूपराशि जीवन मे कभी देखूंगा, यदि यह जानता तो कभी सन्तान-धर्म ग्रहण न करता। यह धर्म इस अग्नि मे जलकर क्षार हो जाता है। धर्म जल गया है-प्राण है। आज चार वर्षों से प्राण भी जल रहा है, बचना नही चाहता। दाह! कल्याणी! दाह! ज्वाला! लेकिन जलने वाला, ईंधन अब बच नही गया है। प्राण जा रहा है। चार बरस से सह रहा हूं; अब सहा नही जाता। क्या तुम मेरी होगी?''

कल्याणी-''तुम्हारे ही मुंह से सुना है कि सन्तान-धर्म का एक यह भी नियम है कि जिसकी इन्द्रिय परवश हो जाए, उसका प्रायश्चित मृत्यु है। क्या यह सच है?''

भवानन्द-''यह सच है।''

कल्याणी-''तो तुम्हारे लिए भी वही प्रायश्चित मृत्यु है?''

भवानन्द-''मेरे लिए एकमात्र प्रायश्चित मृत्यु है।''

कल्याणी-''तुम्हारी मनोकामना पूरी होने पर मरोगे?''

भवानन्द-''निश्चय मरूंगा!''

कल्याणी-''और यदि मै मनोकामना पूरी न करूं?''

भवानन्द-''तब भी मृत्यु निश्चय है। कारण, मेरी इन्द्रियां परवश हो चुकी है। आगामी युद्ध मे.....''

कल्याणी-''तुम अब विदा हो! मेरी कन्या भिजवा दोगे?''

भवानन्द ने आंसू भरी आंखो से कहा-''भिजवा दूंगा। क्या मेरे जाने पर भी मुझे ह्दय मे याद रखोगी?''

कल्याणी-''याद रखूंगी-व्रमच्युत विधर्मी के रूप मे याद रखूंगी।''

भवानन्द विदा हुए। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

भवानन्द विचार-सागर मे गोते लगाते हुए मठ की तरफ चले। वे राह मे अकेले चले आ रहे थे। वन मे भी अकेले ही उन्होंने प्रवेश किया। अब उन्होने देखा कि वन मे उनके आगे-आगे एक आदमी चला जा रहा है। भवानन्द ने पूछा-''कौन हो भाई?''

अग्रगामी व्यक्ति ने कहा-''जानना चाहते हो? उत्तर देता हूं-एक पथिक''

भावानन्द-''वन्दे-''

वह आदमी बोला-''मातरम्।''

भवानन्द-''मै भवानन्द स्वामी हूं।''

अगग्रामी-''मै धीरानंद।''

भवानन्द-''धीरानंद! कहां गये थे?''

धीरानंद-''आपकी ही खोज मे।''

भवानन्द-''क्यो?''

धीरानंद-''एक बात कहने।''

भवानन्द-''कौन-सी बात?''

धीरानंद-''अकेले मे कहने की है।''

भवानन्द-''यही बताओ न, यह तो निर्जन स्थान है।''

धीरानंद- '' आप नगर मे गए थे''

भवानंद- ''हाँ।''

धीरानंद- ''गौरी के घर?''

भवानंद- ''तुम भी नगर मे गए थे क्या?''

धीरानंद- ''वहां एक परम सुंदरी रहती है?''

भवानंद- कुछ विस्मित भी हुए डरे भी। बोले- ''यह सब कैसी बाते है?''

धीरानंद- ''आप उसके साथ मुलाकात की थी?''

भवानंद- ''हसके बाद?''

धीरानंद- ''आप उस कामिनी के प्रति अति अनुरक्त है?''

भवानंद- ''(कुछ विचारकर) धीरानंद! तुमने क्यो इतनी खोज-बीन की। देखो धीरानंद! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सच है। लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त कितने लोग यह बात जानते है?''

धीरानंद- ''और कोई नही।''

भवानंद- ''तब तुम्हारा बध करने से ही मै मुक्त हो सकता हूँ।''

धीरानंद- ''कर सकते हो?''

भवनांद- ''तब आओ, इस निर्जन स्थान मे ही युद्ध करे। हो सकता तो मै तुम्हारा बध कर कलंक से बचूं या तुम मेरा बध कर दो, ताकि सारी ज्वालाओ मे मेरी मुक्ति हो जाए। बोलो, पास मे अस्त्र है?''

धीरानंद- ''है! खाली हाथ किसकी मजाल है कि तुम्हारे सामने यह बाते करे। यदि युद्ध की ही तुम्हारी इच्छा है तो वही सही, पर संतान-संतान मे विरोध निषिद्ध है किन्तु आत्महत्या के लिए किसी के साथ भी युद्ध करने मे हर्ज नही। जो बात कहने के लिए मै तुम्हे खोज रहा था, क्या वह सब सुन लेने पर युद्ध करना अच्छा न होगा?''

भवानंद- ''हर्ज क्यो है कहो!''

भवानंद ने तलवार निकाल कर धीरानंद के कंधे पर रख दी। धीरानंद भागे नही।

धीरानंद- ''मै यह कह रहा था कि तुम कल्याणी से विवाह कर लो।''

भवानंद- ''कल्याणी यह! भी जानते हो?''

धीरानंद- ''विवाह क्यों नही कर लेते?''

भवानंद- ''उसके तो पति जीवित है''

धीरानंद- ''वैष्णो का ऐसा विवाह होता है।''

भवानंद- ''यह नीच वैरागियो की बात है-संतानो मे नही। संतान की शादी नही होती।''

धीरानंद- ''संतान-धर्म क्या अपरिहार्य है? तुम्हारे तो प्राण जा रहे है। छि:! छि:! मेरा कंधा न कट गया।'' (वस्तुत: धीरानंद के कंधे से रक्त निकल रहा था।)

भवानंद- ''तुम किसलिए मुझे यह अधर्म-मति देने आए हो? अवश्य ही तुम्हारा कोई स्वार्थ है!''

धीरानंद- ''वह भी कहने की इच्छा है। तलवार न धंसना, बताता हूं। इस संतान-धर्म ने मेरी हड्डियो को जर्जर कर दिया है। मै इसका परित्याग कर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताने के लिए उतावला हो रहा हूं। मै इस संतान-धर्म का परित्याग करूंगा। लेकिन क्या मेरे लिए घर जाकर बैठने का अवसर है। विद्रोही के रूप मे अनेक लोग मुझे पहचानते है। घर जाकर बैठते ही शायद राजपुरुष सर उतार ले जाएंगे। अथवा सन्तान लोग ही विश्वासघात समझकर मार डालेगे। इसीलिए तुम्हे भी अपना साथी बना लेना चाहता है।'' भवानन्द-''क्यो, मुझे क्यो?''

धीरानन्द- ''यही असली बात है। सन्तान गण तुम्हारे अधीन है। सत्यानन्द अभी यहां है नही; इनके नायक हो तुम। इस सेना को लेकर युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी, इसका मुझे विश्वास है। युद्ध मे विजय प्राप्त कर क्यो नही तुम अपने नाम से एक राज्य स्थापित करते? सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी

तुम्हारी मन्दोदरी हो, मै भी तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताऊं और आशीर्वाद करूं। सन्तान-धर्म को अलग जल मे डुबो दो!''

भवानन्द ने धीरानन्द के कंधे पर से तलवार हटा ली; बोले-''धीरानन्द! युद्ध करो! मै तुम्हारा वध करूंगा। मै इन्द्रिय-परवश हो सकता है, लेकिन विश्वासघातक नही। तुमने मुझे विश्वासघाती होने का परामर्श दिया है- स्वयं भी विश्वासघातक हो। तुम्हे सामने मारने से ब्रह्महत्या भी न होगी। मै तुम्हारा वध करूंगा!''

बात समाप्त होते-न-होते धीरानन्द दम भरकर भागे। भगवान ने पीछा न किया। भगवान कुछ अनमने से थे; उन्होने अब देखा, धीरानन्द का कही पता न था।

मठ मे जाकर और फिर भवानन्द जंगल मे घुस गए। उस जंगल मे एक जगह प्राचीन अट्टालिका का भग्नावशेष है। उस ढूहे पर घास-पात आदि जम आई है। वहां असंख्य सर्पों का वास है। ढूहे की जमीन अपेक्षाकृत साफ और ऊंची थी। भवानन्द उसी पर जाकर बैठे और चिंता मे मग्न हो गए।

भयानक अंधेरी रात थी। उस पर वह जंगल अति विस्तृत, एकदम सूना जंगल वृक्ष-लताओ से घना और दुर्भेद्य, गमनागमन मे दुष्कर है। आवाज आती भी है तो भूखे शेर की हुंकार, अन्यान्य पशुओ के भागने या बोलने का शब्द, कभी पक्षियो के पर फटफटाने की आवाज, तो कभी भागते हुए पशुओ के पैर की खरखराहट। ऐसे निर्जन स्थान मे उस ढूहे पर अकेले भगवान बैठे हुए है। उनके लिए इस समय पृथ्वी है ही नही, या केवल उपादान मात्र है। भवानन्द निश्चल थे, श्वास-प्रश्वास अति सूक्ष्म, अपने मे ही विलीन, माथे पर हाथ रखे बैठे थे। मन मे सोचते थे-जोहोना होना है, अवश्य होगा। भागीरथी की जल-तरंगो के बीच क्षुद्र हाथी की तरह इंद्रिय-स्रोत मे डूब गया, यही दुःख है। एक क्षण मे इंद्रियो का घ्वंस हो सकता है, शरीर-निपात कर देने से। मै इसी इंद्रिय के वश मे हो गया? मेरा मरना ही अच्छा है। धर्मत्यागी! छि :! छि :! मै अवश्य मरूंगा। इसी समय माथे पर पेचक ने भयानक शब्द किया। भवानन्द अब खुलकर बड़बड़ाने लगे- ''यह कैसा शब्द? कान मे ऐसा सुनाई पड़ा, मानो भय का आह्वान हो। मै नही जानता, मुझे कौन बुलाता-यह किसका शब्द है? किसने राह बतायी, किसने मरने के लिए कहा? पुण्यमय अनन्त! तुम शब्द-शब्दमय हो; लेकिन तुम्हारे शब्द का अर्थ तो मै समझ नही पाता हूं।''

इसी समय भीषण जंगल मे से मधुर साथ ही गंभीर, प्रेम भरा मनुष्य-कष्ठ सुनाई दिया-''आशीर्वाद देता हूं, धर्म मे तुम्हारी मति अवश्य होगी!''

भवानन्द के शरीर के रोगटे खड़े हो गये-यह क्या? यह तो गुरुदेव की आवाज है-

''महाराज! आप कहां है? इस समय सेवक को दर्शन दीजिये।''

लेकिन किसी ने भी दर्शन न दिया, किसी ने भी उत्तर न दिया। भवानन्द ने बार-बार बुलाया, लेकिन कोई उतर न मिला। इधर-उधर खोजा, कही कोई न था।

रात बीतने पर जब जंगल मे प्रभात का सूर्य उदय हुआ-जंगल मे प्रभात का सूर्य उदय हुआ-जंगल मे पत्तो की हरियाली जब चमक उठी, तब भवानन्द मठ मे वापस आ गए। उनके कानो मे आवाज पहुंची- ''हरे मुरारे! हरे मुरारे!'' पहचान गए कि यह सत्यानन्द की आवाज है। समझ गए कि प्रभु वापस आ गए!

जीवानन्द के कुटी से बाहर चले जाने पर शान्ति देवी फिर सारंगी लेकर मृदु स्वर मे गाने लगी-

''प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहित वहित्र चरित्रमखेदं,
केशवधूत मीन शरीर,

जय जगदीश हरे!''

गोस्वामी विरचित स्तोत्र को जिस समय सारंगी की मधुर ध्वनि पर कोमल स्वर से शांति गाने लगी, उस समय वह स्वर-लहरी वायुमण्डल पर इस तरह तंरगित हो उठी, जिस तरह जल मे अवगाहन करने पर स्रोत वाहिनी नदी मे धार कुण्डलाकार होकर लहराने लगती है। शांति गाने लगी!

''निन्दसि यज्ञविधेरह: श्रृतिजात

सदस्य हृदय दर्शित पशुघातम,

केशव धुत बुद्ध शरीर

जय जगदीश हरे!''

इसी समय किसी ने बाहर से गंभीर स्वर मे-मेघगर्जन के समान गंभीर स्वर मे गाया!

''म्लेच्छ निवहनिधने कलपयसि करवालम्

धूमकेतुमिति किमपि करालम्

केशवधृत कल्कि शरीर

जय जगदीश हरे।''

शांति ने भक्ति-भाव से प्रणत होकर सत्यानन्द के पैरों की धूलि ग्रहण की और बोली-

''प्रभो! मेरा ऐसा कौन-सा भाग्य है कि श्री पादपद्मो का यहां दर्शन मिला। आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा?'' यह कहकर शांति ने फिर स्वर-लहरी छेड़ी!

''भवचरणप्रणता वयमिति भावय कुरु कुशल प्रणतेषु।''

सत्यानन्द ने कहा- ''तुम्हे मै पहचानता न था, बेटी! रस्सी की मजबूती न जानकर मैने उसे खीचा था। तुम मेरी अपेक्षा ज्ञानी हो। इसका उपाय तुम्ही कहो। जीवानन्द से न कहना कि मै सब कुछ जानता हूं। तुम्हारे प्रलोभन से वे अपनी जीवन-रक्षा कर सकेगे-इतने दिनो से कर ही रहे है ऐसा होने से मेरा कार्योद्धार हो जाएगा।''

शांति के उन विशाल लोल कटाक्षों मे निदाघ-कादम्बिनी मे विराजित बिजली के सामान घोर रोष प्रकट हुआ। उसने कहा-

''यह क्या कहते है महाराज! मै और मेरे पति एक आत्मा है। मरना होगा तो वे मरेगे ही, इसमे मेरा नुकसान ही क्या है। मै भी तो साथ मरूंगी! उन्हे स्वर्ग मिलेगा तो क्या मुझे स्वर्ग न मिलेगा?''

ब्रह्मचारी ने कहा-देवी! मै कभी हारा न था, आज तुमसे तर्क मे हार मानता है। मां ! मै तुम्हारा पुत्र है-संतान पर स्नेह रखो। जीवानन्द के प्राणो की रक्षा करो। इसी से मेरा कार्योद्धार होगा।

बिजली हंसी। शांति ने कहा-मेरे स्वामी धर्म मेरे स्वामी के ही हाथ है। मै उन्हे धर्म से विरत करनेवाली कौन हूं? इहलोक मे स्त्री का देवता पति है : किंतु परकाल मे सबका पिता धर्म होता है। मेरे समीप मेरे पति बड़े है उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है-उससे भी बढ़कर मेरे लिए पति का धर्म है। मै अपने धर्म को जिस दिन चाहूं जलांजलि दे सकती हूं, लेकिन क्या स्वामी के धर्म को जलांजलि दे सकती हूं? महाराज! तुम्हारी आज्ञा पर मरना होगा तो मेरे स्वामी मरेगे, मै मना नही कर सकती।

इस पर ब्रह्मचारी ने ठंडी सांस भरकर कहा-''मां! इस घोर व्रत मे बलिदान ही है। हम सबको बलिदान चढ़ाना पड़ेगा। मै मरूंगा जीवानन्द, भवानन्द-सभी मरेगे, शायद तुम भी मरोगी। किन्तु देखो, कार्य पूरा करके ही मरना होगा, बिना कार्य के मरना किस काम का? मैने केवल जन्मभूमि को ही मां माना था और किसी को भी मां नही कहा, क्योकि सुजला-सुफला माता के अतिरिक्त मेरी और कोई माता नही। अब तुम्हे भी मां

कहकर पुकारा है। तुम माता होकर हम संतानो का कार्य सिद्ध करो। जिससे हमारा कार्योद्धार हो वही करो-जीवानन्द की प्राण-रक्षा करना, अपनी रक्षा करना!

यही कहकर सत्यानन्द-हरे मुरारे, मधुकैटभारे? गाते हुए चले गये।

क्रमश: सन्तान समप्रदाय में समाचार प्रचारित हुआ कि सत्यानन्द आ गये है और सन्तानो से कुछ कहना चाहते है। अत: उन्होने सबको बुलवाया है। यह सुनकर दल-के-दल सन्तान लोग आकर उपस्थित होने लगे। चांदनी रात मे नदी-तट पर देवदारु के वृहत् जंगल मे आम, पनस, ताड़, वट, पीपल, बेल, शाल्मली आदि पेड़ो के नीचे करीब दस सहस्र सन्तान आ उपस्थित हुए। सब आपस में सत्यानन्द के लौट आने का समाचार सुनकर महाकोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किसलिए वहां गये थे- यह साधारण लोग जानते न थे। अफवाह थी कि वे सन्तानो की मंगलकामना से प्रेरित होकर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने ासगये थे। सब आपस मे कानाफूसी करने लगे-

''महाराज की तपस्या सिद्ध हो गयी है- अब हम लोगो का राज्य होगा।'' इस पर बड़ा कोलाहल होने लगा। कोई चीत्कार करने लगा-मारो-मारो, पापियो को मारो। कोई कहता-''जय-जय! महाराज की जय! कोई गाने लगा- हरे मुरारे मधुकैटभारे ! किसी ने ''वंदेमारम'' गाना गाया। कोई कहता-''भाई! ऐसा कौन दिन होगा कि तुच्छ बंगाली होकर भी मै रणक्षेत्र मे शरीर उत्सर्ग करूंगा।'' कोई कहता-- ''भाई ! ऐसा कौन दिन होगा कि अपना ही धर्म हम स्वयं भोग करेगे।'' इस तरह दस सहस्र मनुष्यो के कण्ठ-स्वर से निकली गगनभेदी ध्वनि जंगल, प्रान्त, नदी, वृक्ष, पहाड़ सब कांप उठे।

एकाएक शब्द हुआ- वन्देमातरम और लोगो ने देखा कि ब्रह्मचारी सत्यानन्द सन्तानो के मध्य आकर खड़े हो गये। इस समय दस सहस्र-मस्तक उसी चांदनी मे वनभूमि पर प्रणत हो गये। बहुत ही ऊंचे स्वर मे, जलद गंभीर शब्दो मे सत्यानन्द ने दोनों हाथ उठाकर कहा- ''शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाली बैकुण्ठनाथ जो केशिमथन मधु-मुर-नरकमर्दन, लोक-पालक है वे तुम लोगो के बाहुओ मे बल प्रदान करे, मन मे भक्ति दे, धर्म मे शक्ति दे! तुम सब लोग मिलकर एक बार उनका गुणगान करो।''

इस पर दस सहस्र कण्ठो से एक साथ गान होने लगा।

''जय जगदीश हरे।

प्रलयपयोधि जले धृतवानसि वेदं

विदित विहिवमखेदम

जय जगदीश हरे।''

इसके उपरान्त सत्यानन्द महाराज उन लोगो को पुन: आशीर्वाद प्रदान कर बोले-

''संतानो! तुम लोगो से आज मुझे कुछ विशेष बात कहनी है। टॉमस नाम के एक विधर्मी दुराचारी ने अनेक संतानो का नाश किया है। आज रात हम लोग उसका ससैन्य वध करेगे! जगदीश्वर की ऐसी ही आज्ञा है। तुम लोग क्या चाहते हो?''

भयानक हर्षध्वनि से जंगल विदीर्ण उठा- ''अभी मारेंगे! बताओ, चलो, उन सबको दिखा दो। मारो! मारो! शत्रुओं का नाश करो?'' इसी तरह के शब्द दूर के पहाड़ो से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगे। इस पर सत्यानन्द फिर कहने लगे- ''उसके लिए हम हम लोगो को जरा धैर्य धारण करना पड़ेगा। शत्रुओ के पास तोप है; बिना तोप के उनके साथ युद्ध हो नही सकता। विशेषत: वे सब वीर-जाति के है। हमारे पदचिन्ह दुर्ग से 17 तोपे आ रही है। तोपो के पहुंचते ही हम लोग युद्ध आरंभ करेंगे। यह देखो, प्रभात हुआ चाहता है। ब्रह्ममुहूर्त के 4 बजते ही....लेकिन यह क्या''--

''गुड्डुम-गुड्डुम-गुम! अकस्मात् चारो तरफ विशाल जंगल में तोपो की आवाज होने लगी। यह तोप अंगरेजो की थी। जाल मे पड़ी हुई मछली की तरह कप्तान टॉमस ने सन्तानो को इस जंगल मे घेरकर वध करने का उद्योग किया था।

''गुड्डम गुड्डम गुम!'' -- अंगरेजों की तोपे गर्जन करने लगी। वह शब्द समूचे जंगल में प्रतिध्वनित होकर सुनाई पड़ने लगा। वह ध्वनि नदी के बांध से टकराकर सुनाई पड़ी। सत्यानन्द ने तुरंत आवाज दी- ''देखो, किसकी तोपे है? कई सन्तान तुरंत घोड़े पर चढ़कर देखने के लिए चल पड़े। लेकिन उन लोगो के जंगल से निकलते ही उन पर सावन की बरसात के समान गोले आकर पड़े। अश्वसहित उन सबने वही अपना प्राण त्याग किया। दूर से सत्यानन्द ने देखा, बोल - ''पेड़ पर चढ़कर देखो!'' उनके कहने के साथ जीवानन्द ने एक पेड़ पर ऊंचे चढ़कर बताया-''अंगरेजो की तोपे!'' सत्यानन्द ने पूछा -''अश्वारोही सैन्य है या पदातिक?''

जीवानन्द -''दोनो है?''

सत्यानन्द - ''कितने है?''

जीवानन्द -''अन्दाज नही लग सकता। वे सब जंगल की आड़ से बाहर आ रहे है?''

सत्यानन्द -''गोरे है या केवल देशी फौज?''

जीवानन्द - ''गोरे है।''

अब सत्यानन्द ने कहा - ''तुम पेड़ से उतर आओ।'' जीवानन्द पेड़ से उतर आये।

सत्यानन्द ने कहा - ''तुम दस हजार सन्तान यहां उपस्थित हो। देखना है, क्या कर सकते हो! जीवानन्द ! आज के सेनापति तुम हो।''

जीवानन्द हर्षोत्फुल्ल होकर एक छलांग मे घोड़े पर सवार हो गये। उन्होने एक बार नवीनानन्द की तरफ ताककर इशारे मे ही कुछ कहा-कोई उसे समझ न सका। नवीनानन्द ने भी इशारे मे ही उत्तर दिया। केवल वे दोनो ही आपस मे समझ गये कि शायद इस जीवन मे यह आखिरी मुलाकात है; पर नवीनानन्द ने दाहिनी भुजा उठाकर लोगो से कहा-''भाइयो! समय है, गाओ -- ''जय जगदीश हरे!'' दस सहस्त्र सन्तानो के मिलित कण्ठ ने आकाश, भूमि, वन-प्रांत को कंपा दिया। तोप का शब्द उस भीषण हुंकार मे डूब गया। दस सहस्त्र सन्तानो ने भुजा उठाकर गाया--

''जय जगदीश हरे!

म्लेछ निवहनिधने कलयसि करवालम्''

इसी समय अंगरेजो की गोली-दृष्टि जंगल का भेदन करती हुई सन्तानों पर आकर पड़ने लगी। कोई गाता-गाता छिन्नमस्तक छिन्न-बाहु छिन्न-हृतपिण्ड होकर जमीन पर गिरने लगा। लेकिन गाना बन्द न हुआ, वे सब गाते ही रहे - ''जय जगदीश हरे!''

गाना समाप्त होते ही सब निस्तब्ध हो गये। वह सारा वातावरण - नदी, जंगल, पहाड़ - एकदम निस्तब्ध हो गया। केवल तोपो का गर्जन गोरो के अस्त्रो की झंकार और पद-ध्वनि दूर से सुनाई पड़ने लगी।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सत्यानन्द ने कहा - ''भगवान तुम्हारी रक्षा करेगे। तोप कितनी दूरी पर है?''

ऊपर से आवाज दी ''इसी जंगल के समीप एक छोटा मठ है, उसी के पास।''

सत्यानन्द -''तुम कौन हो?''

ऊपर से आवाज आयी -''मै नवीनानन्द।''

अब सत्यानन्द ने कहा – ''तुम लोग दस हजार हो , तुम्हारी विजय होगी! क्या देखते हो छीन लो तोपे !''

यह सुनते ही अश्वारोही जीवानन्द ने आवाज दी – ''आओ भाइयो,मारो !''

इस पर दस सहस्त्र सन्तान सेना, अश्वारोही और पदतिक, तीर की तरह धावा बोलती आगे बढ़ी। पदातिको के कन्धे पर बन्दूक, कमर मे तलवार और हाथ मे भाले थे। बहुत-से सन्तानो ने बिना युद्ध किये ही गिरकर प्राण-त्याग किया। एक ने जीवानन्द से कहा – ''जीवानन्द! अनर्थक प्राणि-हत्या से क्या फायदा है?''

जीवानन्द ने मुड़कर देखा, कहने वाले भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा – ''तब क्या करने को कहते हो?''

भवानन्द -''वन के अन्दर रहकर वृक्षो का आश्रय लेकर अपनी प्राण-रक्षा करे। तोपो के सामने खुले मैदान मे बिना तोप की सन्तानसेना एक क्षण भी टिक न सकेगी। लेकिन जंगल मे पेड़ो की आड़ लेकर हम लोग बहुत देर तक युद्ध कर सकते है।''

जीवानन्द -''तुम ठीक कहते हो! लेकिन प्रभु की आज्ञा है कि तोप छीन जाए। अत: हम लोग तोप छीनके ही जाएंगे।''

भवानन्द – ''किसकी हिम्मत है कि तोप छीन सके। लेकिन यदि जाना ही है, तो तुम ठहरो, मै जाता हूं।''

जीवानन्द – ''यह न होगा, भवानन्द! आज मेरे मरने का दिन है।''

भवानन्द -''आज मेरे मरने का दिन है।'

जीवानन्द – ''मुझे प्रायश्चित करना होगा।''

भवानन्द -''तुम निष्पाप हो, तुम्हे प्रायश्चित की जरूरत नही। मेरा चरित्र कलुषित है; मुझे ही मरना होगा। तुम ठहरो, मै जाता हूं।''

जीवानन्द --''भवानन्द, तुमसे क्या पाप हुआ है, मै नही जानता; लेकिन तुम्हारे रहने से सन्तानो का उद्धार होगा। मै जाता हूं।''

भवानन्द ने चुप होकर फिर कहा --''मरना होगा तो आज ही मरेगे, जिस दिन जरूरत होगी,उसी दिन मरेगे। मृत्यु के लिए मुझे समय-काल की जरूरत नही।''

जीवानन्द – ''तब आओ!''

इस बात पर भवानन्द सबके आगे हुए। दल-के-दल, एक-एक-कर सन्तान गोले खाकर मरकर गिरने लगे। सन्तान-सैन्य बिखरने लगी। तीर की तरह आगे बढ़ते हुए सन्तान गोला खाकर कटे वृक्ष की तरह नीचे गिरते थे। सैकड़ो लाशे पट गयी। इसी समय भवानन्द ने चिल्लाकर कहा -''आज इस तरंग मे संतानो को कूदना है कौन आता है भाई?''

इस पर सहस्त्र-सहस्त्र कण्ठो से आवाज आयी-''वन्देमातरम्!'' दनादन गोले आ रहे थे। तीर गिर रहे थे, लेकिन संतान सैन्य तीर की तरह आगे बढ़ती ही जाती थी। सबका लक्ष्य तोप छीनना था।

इसके बाद तो दस हजार सन्तान सैन्य 'वन्देमातरम्' गाती हुई, अपने भाले आगे कर तीर की तरह तापों पर जा पड़ी। यद्यपि वे लोग गोले और गोलियो की बौछार से क्षत-विक्षत हो चुके थे, लेकिन पलटे नही, भागे नही घनघोर युद्ध शुरू हो गया। लेकिन इसी समय रण-कुशल टॉमस की आज्ञा से एक सेना बन्दूको पर संगीने चढ़ाकर पीछे से निकलकर संतानो के दाहिने बाजू पर गिरी। अब जीवानन्द ने कहा-''भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब सन्तान-सैन्य को नाश करने की जरूरत नही लौटाओ इन्हे।''

भवानन्द -''अब कैसे लौट सकते है? अब तो जो पीछे पलटेगा, वही मारा जाएगा।''

जीवानन्द – ''सामने और दाहिने से आक्रमण हो रहा है। आओ, धीरे-धीरे बाएं होकर निकल चले।''

भवानन्द -''बाएं घूमकर कहां जाओगे? बाएं नदी है – वर्षा से भरी हुई नदी। इधर गोले से बचोगे, तो नदी

मे डूबकर मरोगे।''

जीवानन्द -''मुझे याद है, नदी पर एक पुल है।''

भवानन्द - ''लेकिन इतनी संख्या मे सन्तान जब पुल पर एकत्र हो जाएंगे, तो एक ही तोप उनका समूल नाश कर देगी।''

जीवानन्द - ''तब एक काम करो। आज तुमने जो शौर्य दिखाया है, उससे तुम सब कुछ कर सकते हो। थोड़ी सेना के साथ तुम सामना करो। मै अवशिष्ट सेना को बाएं घुमाकर निकाल ले जाता हूं। तुम्हारे साथ की सेना तो अवश्य ही विनष्ट होगी, लेकिन अवशिष्ट सन्तान सेना नष्ट होने से बच जाएगी।''

भवानन्द -''अच्छा, मै ऐसा ही करूंगा।''

इस तरह दो हजार सैनिको के साथ भवानन्द के सामने से फिर गोलन्दाजो पर आक्रमण किया।

उनमे अपूर्व उत्साह था। घोरतर युद्ध होने लगा। गोलन्दाज सेना उनके विनाश मे और तोप-रक्षा मे संलग्न हुई। सैकड़ों सन्तान कट-कटकर गिरने लगे। लेकिन प्रत्येक सन्तान अपना बदला लेकर मरता था।

इधर अवसर पाकर जीवानन्द अवशिष्ट सेना के साथ बाएं मुड़कर जंगल के किनारे से आगे बढ़े। कप्तान टॉमस के सहकारी लेफ्टिनेट वाटसन ने देखा कि सन्तानो का बहुत बड़ा दल भागने की चेष्टा मे बाएं घूमकर जाना चाहता है। इस पर उन्होने देशी सिपाहियो की सेना लेकर उनका पीछा किया।

कप्तान टॉमस ने भी यह देखा। सन्तान-सेना का प्रधान भाग इस तरह गति बदल रहा है- यह देखकर उन्होने सहकारी से कहा - ''मै दो-चार सौ सिपाहियो के साथ सामने की सेना को मारता हूं, तुम शेष सेना के साथ उन पर धावा करो। बाएं से वाटॅसन जाते है, दाहिने से तुम जाओ। और देखो, आगे जाकर पुल का मुंह बन्द कर देना। इस तरह वे सब तरह से घिर जाएंगे। तब उन्हे फंसी चिड़िया की तरह मार गिराओ। देखना, देशी फौज भागने मे बड़ी तेज होती है, अत: सहज ही उन्हे फंसा न पाओगे। अश्वारोही सेना को व न सके अन्दर से छिपकर पहले पुल के मुंह पर पहुंच जाने को कहो, तब वे फंस सकेगे।?''

कप्तान टॉमस ने, जो कुशल सेनापति था, अपने अहंकार के वश होकर यही भूल की। उसने सामने की सेना को तृणवत समझ लिया था। उसने केवल दो सौ पदतिक सैनिको को अपने पास रहने दिया और शेष सबको भेज दिया। चतुर भवानन्द ने जब देखा कि तोप के साथ समूची सेना उधर चली गयी और सामने की छोटी सेना सहज ही वध्य है, तो उन्होने अपनी सेना को जोश दिलाया - ''क्या देखते हो, सामने मुट्ठी भर अंगरेज है, मारो! इस पर वह संतान सेना टॉमस की सेना पर टूट पड़ी। उस आक्रमण को थोड़े-से अंगरेज सह न सक; मूली की तरह वे कटने लगे। भवानन्द ने स्वयं जाकर कप्तान टॉमस को पकड़ लिया। कप्तान अंत तक युद्ध करता रहा। भवानन्द ने कहा - ''कप्तान साहेब! मै तुम्हे मारुंगा नही, अंगरेज हमारे शत्रु नही है। क्यो तुम मुसलमानो की सहायता करने आये? तुम्हें प्राणदान तो देता हूं, लेकिन अभी तुम बन्दी अवश्य रहोगे। अंगरेजो की जय हो, तुम हमारे मित्र हो।''

कप्तान ने भवानन्द को मारने के लिए संगीन उठायी, लेकिन भवानन्द से शेर की तरह जकड़े हुए थे, वह हिल न सका। तब भवानन्द रासने अपने सैनिकों से कहा -''बांधो इन्हे।'' दो-तीन सन्तानो ने टॉमस को बांध लिया। भवानन्द ने कहा - ''इन्हे घोड़े पर बैठाकर ले चलो। हम लोग जीवानन्द की सहायता को जाते हैं।''

इसी तरह वह अल्पसंख्यक सन्तान-सेना कप्तान टॉमस को कैदी बनाकर घोड़े पर चढ़ भवानन्द के साथ जीवानन्द की सहायता के लिए आगे बढ़ी।

जीवानन्द की सेना का उत्साह टूट चुका था, वह भागने को तैयार थी। लेकिन जीवानन्द और धीरानंद ने उन्हे समझाकर किसी तरह ठहराया। परन्तु सब सेना को जीवानन्द और धीरानंद पुल की तरफ ले गये। वहां पहुंचते

ही एक तरफ से हेनरी ने और दूसरी तरफ से वाटसन ने उन्हे घेर लिया। अब सिवा युद्ध के परित्राण न था। इधर सेना भग्नोत्साह थी।
इसी समय टॉमस की तोपे पास आ पहुंची। अब सन्तानो का दल छिन्न-भिन्न होने लगा। उन्हे प्राण-रक्षा की कोई आशा न रही। जिसे जिधर राह मिली, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हे बहुत संयत करने की चेष्टा की, लेकिन कोई फल न हुआ, संतानो का दल तितर-बितर होने लगा। इसी समय ऊंची आवाज मे सुनाई दिया - ''पुल पर जाओ, पुल पर जाओ! उस पार चले जाओ, अन्यथा नदी मे डूब मरोगे।'' अंगरेजो की सेना की तरफ मुंह किये हुए पुल पर चले जाओ!

जीवानन्द ने देखा कि कहनेवाले भवानंद सामने है। भवानन्द ने कहा,-''जीवानन्द, तुम सेना को पुल पर ले जाओ। दूसरे प्रकार से रक्षा नही है।'' यह सुनते ही संतान-सेना क्रमशः पुल पर पहुंचने लगी। थोड़ी ही देर मे समूची संतान-सेना पुल पर जा पहुंची। भवानन्द, जीवानन्द धीरानन्द सब एकत्र थे। भवानन्द ने जो कुछ कहा था, वही हुआ। अंगरेजो की तोपे पुल के मुंह पर लगी थी और वे गोले उगलने लगी। भयानक संतान-क्षय होने लगा। यह देखकर भवानन्द ने कहा - ''जीवानन्द! यह एक तोप हमारा नाश कर डालेगी! क्या देखते हो, जाओ हम तीनो उस पर टूटकर अधिकार ले।''

भवानंद के यह कहते ही जय नाद उठा -''वन्देमातरम!'' और उसी समय तीन तलवारे पुनः सिरो पर घूम उठी। तोपची तमाशा ही देखते रह गये। हेनरे और वासटन दूर खड़े अहंकार और प्रसन्नता मे इसे खिलवाड़ और मूर्खता समझते रहे। किन्तु इसी समय रण का पास पलट गया। पलक मारते ही तीनो सन्तान-नायक तोपचियो पर जा पड़े। तोपचियों के सिर धड़ से कब जुदा हुए कुछ पता नही। उनकी मोह-निद्र टूटी तब, जब बिजली की तरह तलवार चमकाते हुए भवानन्द स्वयं तोप पर खड़े हो गये और बोल -''वन्देमातरम्!'' सहस्त्रो कंठो से निकला -''वन्देमातरम्!'' उसी समय जीवानन्द ने तोप का मुंह अंगरेजी सेना की तरफ कर दिया और तोप प्रति-क्षण आग उगलने लगी। अब भवानंद ने कहा - ''जीवानंद भाई! यह क्षणिक जीत है, अब तुम संतानो को लेकर सकुशल पार चले जाओ। केवल बीस तोप भरनेवाले और मृत्यु का वरण करनेवाले संतानो को तोप की रक्षा के लिए छोड़ दो।''

ऐसा ही हुआ। बीस संतान तोप के इर्द-गिर्द आ डटे। शेष समूची सेना जीवानन्द और धीरानन्द के साथ पार पहुंचने लगी। उस समय भवानंद क्रुद्ध गजराज हो रहे थे। पुल की संकरी जगह पर तोप लगाकर वे लगे गोरी वाहिनी का नाश करने। दल-के-दल तोप छीनने के लिए आगे बढ़ते थे और मरकर ढेर बन जाते थे। उस समय वे बीस युवक अजेय थे। ये लोग शीघ्रता इसलिए कर रहे थे कि अंगरेजो की शेष तोपे पहुंचने के पहले तक ही यह सारी अजेय लीला है। लेकिन भगवान को तो कुछ और ही करना था। एकाएक जंगल के अन्दर से बहुत-सी तोपो का गर्जन सुनाई पड़ने लगा। दोनो ही दल अवाक-रिस्पन्द होकर देखने लगे कि ये किसकी तोपे है?

थोड़ी ही देर मे लोगो ने देखा कि जंगल के अन्दर से महेन्द्र की सत्रह तोपे, तीन तरफ से घेरा, बांधे हुए आग उगलती चली आ रही है। अंगरेजो की उस देशी फौज मे महामारी आ गयी- दल-के-दल साफ होने लगे। यह देख शेष यवन-सिपाही भागने लगे। उधर जीवानंद और धीरानन्द ने भी जैसे ही वातावरण समझा, तैसे ही उनका सारा क्रोध पलट पड़ा और पलट पड़ी सन्तान-सेना। वे भागती हुई यवन-सेना को घेरने और मारने लगे। अवशिष्ट रह गये यही कोई तीस-चालीस गोरे। वह वीर जाति वैसे ही डटी रही। अब भवानन्द ने उन पर धावा बोलने के लिए हाथ उठाया ही था कि जीवानन्द ने कहा - ''भवानन्द! महेन्द्र की कृपा से पूर्ण रण-विजय हुई है; अब व्यर्थ इन्हे मारने से क्या फायदा? चलो लौट चले।''

भवानन्द ने कहा – ''कभी नही,जीवानंद! तुम खड़े होकर तमाशा देखो। एक के भी जिंदा रहते भवानन्द वापस नही हो सकता। जीवानन्द! तुम्हे कसम है, खड़े होकर चुपचाप देखो। मै अकेले इन सबको मारुंगा।''

अभी तक कप्तान टॉमस घोड़े पर बंधे हुए थे। भवानन्द ने आक्रमण के समय कहा – ''उस अंगरेज को मेरे सामने रखो; पहले यह मरेगा, फिर मै मरुंगा।''

टॉमस हिन्दी समझता था। उसने अपने सिपाहियो को आज्ञा दी– ''वीरो! मै तो मरे के समान हूं। इंगलैण्ड की मान–रक्षा करना, तुम्हे मातृभूमि की कसम है! पहले मुझे मारो, इसके बाद प्रत्येक अंगरेज मारकर अपनी जगह मरे।''

''धांय'' एक शब्द हुआ और तुरन्त कप्तान टॉमस मस्तक मे गोली लगने से मरकर गिर पड़ा। यह गोली उसी के एक सिपाही द्वारा चलायी गयी थी। इसके बाद उन सबने आक्रमण किया। अब भवानन्द ने कहा –''आओ भाई! अब कौन ऐसा है जो भीम, नकुल, सहदेव बनकर मेरे साथ मरने को तैयार है?''

इतना कहते ही जीवानंद, धीरानंद और लगभग पचीस जवान आ पहुंचे। घोर युद्ध हो रहा था। तलवारे रही थी। धीरानंद, भवानंद के पास थे। धीरानंद ने कहा–''भवानंद! क्यो? क्या मरने का किसी का ठेका है क्या?'' यह कहते हुए धीरानंद ने एक गोरे को आहत किया।

भवानंद–''यह बात नही? लेकिन मरने पर तो तुम स्त्री–पुत्र का मुंह देखकर दिन बिता न पाओगे!''

धीरानंद–''दिल की बात कहते हो? अभी भी नही समझे?'' (धीरानंद ने आहत गोरे का वध किया)।

भवानंद–''नही''(इसी समय एक गोरे के आघात से भवानंद का बायां हाथ कट गया।)

धीरानंद–''मेरी क्या मजाल थी कि तुम जैसे पवित्रात्मा से यह बाते मै कहता? मै सत्यानंद का गुप्तचर हो कर तुम्हारे पास गया था?''

भवानंद उस समय केवल एक हाथ से युद्ध कर रहे थे। बोले–''यह क्या? महाराज का मेरे प्रति अविश्वास?''

धीरानंद ने उनकी रक्षा करते हुए कहा–''कल्याणी के साथ तुम्हारी जितनी बाते हुई थी,सब उन्होने स्वयं अपने कानो से सुनी।''

भवानंद–''यह कैसे?''

धीरानंद–''वे स्वयं वहां उपस्थित थे। सावधान बचो!(भवानंद ने एक गोरे द्वारा आहत होकर उसे आहत किया) वे कल्याणी को गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम आ गए। सावधान!''(लेकिन इसी समय भवानंद का दाहिना हाथ भी कट गया।)

भवानंद–''मेरी मृत्यु का समाचार उन्हे देना। कहना– मै अविश्वासी नही हूं।''

धीरानंद आंखो से आंसू भरे हुए युद्ध कर रहे थे। बोले–''यह वे जानते है। उन्होने मुझसे कह दिया है कि भवानंद के पास रहना, आज वह मरेगा। मृत्यु के समय उससे कहना कि मै आशीर्वाद देता हूं, परलोक मे तुम्हे बैकुण्ठ प्राप्त होगा।''

भवानंद ने कहा–''संतानो की जय हो! मुझे एक बार मरते समय 'वन्देमातरम्' गीत तो सुनाओ।''

इस पर धीरानंद की आज्ञा पाकर समस्त उन्मत्त संतानो ने एक साथ 'वन्देमातरम्' गीत गाया। इससे उनकी भुजाओ मे दूना बल आ गया। इतनी देर मे अवशिष्ट गोरो का वध हो चुका था। रणक्षेत्र मे एक भी शत्रु न रह गया।

हा! रमणी के रूप–लावण्य! ....इस संसार मे तुझे ही धिक्कार है!

रण–विजय के उपरान्त नदी तट पर सत्यानंद को घेरकर विजयी सेना विभिन्न उत्सवो मे मत्त हो गयी। केवल सत्यानन्द दु:खी थे, भवानन्द के लिए।

अब तक संतानो के पास कोई रण-वाद्य नही था। अब न मालूम कहां से हजारो नगाड़े, ढोल, भेरी, शहनाई, तुरी, रामसिंघा, दमामा आ गये। तुमुल ध्वनि से नदी, तटभूमि और जंगल कांप उठा। इस प्रकार संतानो ने बहुत देर तक विजय का उत्सव मनाया। उत्सव के उपरांत सत्यानन्द स्वामी ने कहा-''आज भगवान सदय हुए है; संतानो की विजय हुई है; धर्म की जय हुई है। लेकिन अभी एक बात बाकी है। जो हमलोगो के साथ इस उत्सव में शरीक न हो सके, जिन्होने हमारे उत्सव के लिए प्राण उत्सर्ग किए किए है, उन्हे हम लोगो को भूलना न चाहिए-विशेषत: उस वीराग्रगण्य भवानन्द को, जिसके अदम्य रण-कौशल से आज हमारी विजय हुई है। चलो, उसके प्रति हमलोग अपना अन्तिम कर्त्तव्य कर आएं।''

यह सुनते ही संतानगण बड़े समारोह से 'वन्देमातरम' आदि जय-ध्वनि करते हुए रणक्षेत्र मे पहुंचे। वहां उन लोगो ने चंदन-चिता सजा कर आदरपूर्वक भवानन्द की लाश सुलाई और आग लगा दी। इसके बाद वे लोग उस वीर की प्रदक्षिणा करते हुए 'वन्देमातरम्' का गीत गाते रहे। संतान-सम्प्रदाय विष्णुभक्त है, वैष्णव सम्प्रदाय नही। अत: इनके शव जलाए ही जाते थे।

इसके उपरांत उस कानन मे केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेद्र, नवीनानन्द और धीरानन्द रह गए। यह पांचो जन परामर्श के लिए बैठ गए। सत्यानन्द ने कहा-''इतने दिनो से हम लोगो ने अपने सर्वकर्म, सर्वसुख त्याग रखे थे, आज यह व्रत सफल हुआ है। अब इस प्रदेश मे यवन सेना नही रह गयी है। जो थोड़ी-बहुत बच गयी है, वह एक क्षण भी हमारे सामने टिक नही सकती। अब तुम लोग क्या परामर्श देते हो?''

जीवानन्द ने कहा-''चलिये, इसी समय चलकर राजधानी पर अधिकार करे।''

सत्यानन्द-''मेरा भी ऐसा मत है।''

धीरानन्द-''सेना कहां है?''

जीवानन्द-''क्यो, यही सेना!''

धीरानन्द-''यही सेना है कहां? किसी को देख रहे है?''

जीवानन्द-''स्थान-स्थान पर ये लोग विश्राम कर रहे होगे; डंके पर चोट पड़ते ही इकट्ठे हो जाएंगे।''

धीरानन्द-''एक आदमी भी न पा सकेगे।''

सत्यानन्द-''क्यो?''

धीरानन्द-''सब इस समय लूट-पाट मे व्यस्त है। इस समय सारे गांव आरक्षित है। मुसलमानो के गांव और रेशम की कोठी लुटने के बाद ही वे लोग घर लौटेगे। अभी किसी को न पाएंगे, मै देख आया हूं।''

सत्यानन्द दुखी हुए बोले-''जो भी हो, इस समय यह समूचा प्रदेश हमारे अधिकार मे आ गया है। अब यहां कोई हमारा प्रतिद्वन्द्वी नही है। अतएव इस वीरेन्द्र भूमि मे तुम लोग अपना सन्तान-राज्य प्रतिष्ठित करो। प्रजा से कर वसूल करो और सैन्य-संग्रह करो। हिन्दुओ का राज्य हो गया है, यह सुनकर बहुतेरी संतान-सैन्य तुम्हारे झण्डे के नीचे आ जाएगी।''

इस पर जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम किया और कहा-''यदि आज्ञा हो महाराजाधिराज! तो हम लोग इसी जंगल मे आपका सिंहासन स्थापित कर सकते है।''

सत्यानन्द ने अपने जीवन मे यह प्रथम बार क्रोध प्रकट किया बोले-''क्या कहा? क्या मुझे केवल कच्चा घड़ा ही समझ लिया है? हमलोग कोई राजा नही है, हम केवल संन्यासी है। इस प्रदेश के राजा स्वयं बैकुण्ठनाथ है, जहां प्रजातन्त्र-राज्य स्थापित होगा। नगर अधिकारी के बाद तुम्ही लोग कार्यकर्ता होगे। मै तो ब्रह्मचर्य-शक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार न करूंगा। अब तुम लोग अपने-अपने काम मे लगो।''

इस पर चारो व्यक्ति प्रणाम करने के बाद उठ गए। सत्यानंद ने इशारे से महेन्द्र को बैठे रहने के लिए कहा, अत: वे तीनो चले गए। अब सत्यानंद ने महेन्द्र से कहा– ''तुम लोगो ने विष्णुमण्डप मे शपथ ग्रहण का सनातन धर्म स्वीकार किया था। भवानन्द और जीवानंद दोनो ने ही प्रतिज्ञा भंग की है। भवानन्द ने स्वीकृत प्रायश्चित कर लिया। हमे इस बात का भय है कि कही जीवानन्द भी किसी दिन प्रायश्चित न कर बैठे। लेकिन मेरा किसी निगूढ़ कारणवश विश्वास है कि वह अभी ऐसा न करेगा। अकेले तुम्ही ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। अब संतानो का कार्योद्धार हो गया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि जब तक संतानो का कार्योद्धार न होगा, स्त्री–कन्या का मुंह न देखोगे। अब कार्योद्धार हो चुका है, अत: तुम फिर संसारी हो सकते हो।''

महेन्द्र की आंखो से आंसू की धारा बह निकली। बड़े कष्ट से महेन्द्र ने कहा– ''महाराज! किसे लेकर संसारी बनूं? स्त्री ने आत्म हत्या कर ली, कन्या कहां है– पता नही! कहां–कहां खोजता फिरूंगा? कुछ भी तो नही जानता।''

इस पर सत्यानंद ने नवीनानंद को बुलाकर कहा– ''महेद्र, ये नवीनानंद गोस्वामी है– बहुत ही पवित्रचेता और मेरे परम प्रिय शिष्य है। तुम्हारी कन्या की खोज कर देगे।'' कहकर सत्यानंद ने शांति से कुछ इशारे से कहा। शांति समझकर प्रणाम कर विदा होना चाहती थी, इसी समय महेद्र ने कहा–''तुम्हारे साथ कहां मुलाकात होगी?''

शांति ने कहा– ''मेरे आश्रम मे आइये।'' यह कहकर शांति आगे–आगे चली।

महेद्र भी सत्यानंद की पदवंदना कर विदा हुए, फिर शांति के साथ–साथ उसके आश्रम मे उपस्थित हुए? उस समय काफी रात बीत चुकी थी। फिर भी विश्राम न कर शांति ने नगर की तरफ यात्रा की।

सबके चले जाने पर सत्यानंदन भूमि पर प्रणत होकर भगवान की वंदना और याद करने लगे। पौ फट रही थी। इसी समय किसी ने आकर उनके मस्तक का स्पर्श कर कहा– ''मैं आ गया हूं।''

ब्रह्मचारी ने उठकर और चकित व्यग्रभाव से कहा– ''आप आ गए क्या!''

जो आए थे उन्होने कहा– ''दिन पूरे हो गए।''

ब्रह्मचारी ने कहा– ''हे प्रभु! आज क्षमा कीजिए। आगामी माघी पूर्णिका को मै आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।''

उस रात को हरिध्वनि के तुमुल नाद से प्रदेश भूमि परिपूर्ण हो गई। संतानो के दल–के–दल उस रात यत्र–तत्र 'वंदेमातरम' और 'जय जगदीश हरे' के गीत गाते हुए घूमते रहे। कोई शत्रु–सेना का शस्त्र तो कोई वस्त्र लूटने लगा। कोई मृत देह के मुंह पर पदाघात करने लगा, तो कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा, कोई गांव की तरफ तो कोई नगर की तरफ पहुंचकर राहगीरो और गृहस्थो को पकड़कर कहने लगा– ''वंदेमातरम कहो, नही तो मार डालूंगा।'' कोई मैदा–चीनी की दुकान लूट रहा था, तो कोई ग्वालो के घर पहुंचकर हांडी भर दूध ही छीनकर पीता था। कोई कहता– ''हम लोग ब्रज के गोप आ पहुंचे, गोपियां कहां है?'' उस रात मे गांव–गांव मे, नगर–नगर मे महाकोलाहल मच गया। सभी चिल्ला रहे थे– '' मुसलमान हार गये; देश हम लोगो का हो गया। भाइयो! हरि–हरि कहो!''–गांव मे मुसलमान दिखाई पड़ते ही लोग खदेड़कर मारते थे। बहुतेरे लोग दलबद्ध होकर मुसलमानो की बस्ती मे पहुंचकर घरो मे आग लगाने और माल लूटने लगे। अनेक मुसलमान ढाढ़ी मुंढ़वाकर देह मे भस्मी रमाकर राम–राम जपने लगे। पूछने पर कहते–

''हम हिंदू है।''

त्रस्त मुसलमानो के दल–के–दल नगर की तरफ भागे। राज–कर्मचारी व्यस्त हो गए। अवशिष्ट सिपाहियो को

सुसज्जित कर नगर रक्षा के लिए स्थान-स्थान पर नियुक्त किया जाने लगा। नगर के किले मे स्थान-स्थान पर, परिखाओ पर और फाटक पर सिपाही रक्षा के लिए एकत्रित हो गए। नगर के सारे लोग सारी रात जागकर ''क्या होगा... क्या होगा?'' करते रात बिताने लगे। हिंदू कहने लगे- ''आने दो, संन्यासियो को आने दो- हिंदुओ का राज्य- भगवान करे- प्रतिष्ठित हो।'' मुसलमान कहे लगे-''इतने रोज के बाद क्या सचमुच कुरानशरीफ झूठा हो गया? हम लोगो ने पांच वक्त नवाज पढ़कर क्या किया, जब हिंदुओ की फतह हुई। सब झूठ है!'' इस तरह कोई रोता हुआ, तो कोई हंसता हुआ बड़ी उत्कंठा से रात बिताने लगा।

यह खबर कल्याणी के कानो मे भी पहुंची आबाल-वृद्ध-वनिता किसी से भी बात छिपी न रही। कल्याणी ने मन-ही-मन कहा- ''जय जगदीश हरे! आज तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ। आज मै स्वामी-दर्शन के लिए यात्रा करूंगी। हे प्रभु! आज मेरी सहायता करो।''

गहरी रात को कल्याणी शय्या से उठी और उसने पहले खिड़की खोलकर राह देखी। राह सूनी पड़ी हुई थी- कोई राह मे न था। तब उसने धीरे से दरवाजा खोलकर गौरी देवी का घर त्यागा। शाही राह पर आकर उसने मन-ही-मन भगवान को स्मरण कर कहा- ''देव! आज पदचिन्ह का दर्शन करा दो।''

कल्याणी नगर के किनारे पहुंची। पहरेवाला ने आवाज दी- ''कौन जाता है?'' कल्याणी ने डरकर उत्तर दिया- ''मै औरत हूं!'' पहरेदार ने कहा- ''जाने का हुक्म नही है।'' वह आवाज जमादार के कान मे पहुंची। उसने कहा- ''जाने की मनाही नही है; जाने की मनाही नहीं है।'' यह सुनकर पहरेवाले ने कहा- ''जाने की मनाही नही है, माई! जाओ, लेकिन आज रात को बड़ी आफत है। कौन जाने माई! किसी आफत मे पड़ जाओ- डाकुओ के हाथ मे पड़ जाओ, मै नही जानता? आज तो न जाना ही अच्छा है।''

कल्याणी ने कहा- ''बाबा! मै भिखारिन हूं। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझे पकड़ कर क्या करेगे?''

पहरेवाले ने कहा- ''उम्र तो है, माई जी! उम्र तो है न! दुनिया मे वही तो जवाहरात है। बल्कि हमी डाकू हो सकते है!'' कल्याणी ने देखा, बड़ी विपद है; वह धीरे से सरक गयी और फिर तेजी से आगे बढ़ी! पहरेदार ने देखा कि औरत रसिक मिजाज नही थी, लाचार होकर पहरे पर बैठा गांजे का दम लगाकर ही संतुष्ट हो गया। उस रात राह मे दल-के-दल घूम रहे थे। कोई मार-मार कहता है, तो कोई भागो-भागो चिल्लाता है। कोई हंसता है, कोई रोता है, कोई राह मे किसी को देखकर पकड़ लेता है। कल्याणी बड़ी विपदा मे पड़ी। राह मालूम नही, और फिर किसी से पूछ भी नही सकती, केवल छिपती हुई राह चलने लगी। छिपते-छिपते एक विद्रोही दल के हाथ मे पड़ गई। वे लोग चिल्लाकर पकड़ने दौड़े। कल्याणी प्राण लेकर जंगल के अंदर घुसकर भागी। वे सब शोर मचाते हुए पकड़ने के लिए पीछे दौड़े। आखिर एक ने आंचल पकड़ लिया, बोला- '' वाह री, चंद्रमुखी!'' इसी समय एक और आदमी अकस्मात पहुंच गया और अत्याचारी को उसने एक लाठी जमायी; वह आहत होकर भागा। परित्राणकर्ता का वेश संन्यासियो का था और उसकी छाती ढंकी हुई थी! उसने कल्याणी से कहा- ''तुम भय न करो। मेरे साथ आओ- कहां जाओगी?''

कल्याणी-''पदचिह्न।''

आगंतुक चौक उठा, विस्मित हुआ; पूछा- '' क्या कहा? पदचिह्न?'' यह कहकर कल्याणी के दोनो कन्धो पर हाथ रखकर गौर से चेहरा देखने लगा।

कल्याणी अकस्मात पुरुष-स्पर्श से भयभीत तथा रोमांचित होकर रोने लगी। इतनी हिम्मत नही हुई कि भाग सके। आगन्तुक ने भरपूर देख लेने के बाद कहा- ''ओ हो, पहचान गया! तुम्ही डायन कल्याणी हो?''

कल्याणी ने भयविह्वल होकर पूछा-'' आप कौन है?''

आगन्तुक ने कहा, ''मै तुम्हारा दासानुदास हूं। हे सुन्दरी! मुझ पर प्रसन्न हो।''

कल्याणी बड़ी तेजी से वहां से हटकर गर्जन कर बोली- ''क्या यह अपमान के लिए ही आपने मेरी रक्षा की थी? देखती हूं , ब्रह्मचारियो का क्या यही धर्म है? आज मै नि:सहाय हूं, नही तो तुम्हारे चेहरे पर लात लगाती।''

ब्रह्मचारी ने कहा-''अयि स्मितवदने! मै बहुत दिनो से तुम्हारे पुष्प समान कोमल शरीर के आलिंगन की कामना कर रहा हूं?'' यह कहकर दौड़कर ब्रह्मचारी ने कल्याणी को पकड़ लिया और जबर्दस्ती छाती से लगा लिया। अब कल्याणी खिलखिला कर हंस पड़ी, बोली ''यह तुम्हारा कपाल है। पहले ही कह देना था- भाई, मेरी भी यही दशा है।'' शान्ति ने पूछा-'' क्यो भाई! महेन्द्र की खोज मे चली हो?''

कल्याणी ने कहा-''तुम कौन हो? तुम तो सब कुछ जानती हो!''

शान्ति बोली-''मै ब्रह्मचारी हूं, सन्तान -सेना का अधिनायक -घोरतर वीर पुरुष! मै सब जानता हूं आज राह मे सिपाहियो का बहुत हुड़दंग ऊधम है, अत: आज तुम पदचिन्ह जा न सकोगी!''

कल्याणी रोने लगी।

शान्ति ने त्योरी बदलकर कहा-''डरती क्यो हो? हम अपने नयनबाणो से हजारो का वध कर सकते है- चलो, पदचिन्ह चले।''

कल्याणी ने ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पाकर मानो हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पा लिया । बोली- ''तुम जहां कहोगी, वही चलूंगी।''

शान्ति कल्याणी को लेकर जंगली राह से चल पड़ी।

झक्क्झक्क्जब आधी रात को शान्ति अपना आश्रम त्यागकर नगर की तरफ चली, तो उस समय जीवानंद वहां उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानंद से कहा- ''मै नगर की तरफ जाती हूं । महेन्द्र की स्त्री को ले आऊंगी। तुम महेन्द्र से कह रखो कि तुम्हारी स्त्री जीवित है।''

जीवानंद ने भवानंद से कल्याणी के जीवन की सारी बाते सुनी थी और उसका वर्तमान वास-स्थान भी सुन चुके थे। क्रमश: ये सारी बाते महेन्द्र को सुनाने लगे।

पहले तो महेन्द्र को विश्वास न हुआ। अन्त मे अपार आनंद से अभिभूत अवाक हो रहे।

उस रात के बीतने पर सबेरे, शान्ति की सहायता से महेन्द्र के साथ कल्याणी की मुलाकात हुई । निस्तब्ध जंगल के बीच अतिघनी शालतरू श्रेणी की अंधेरी छाया के बीच, पशु-पक्षियो की निद्रा टूटने के पहले उन लोगों का परस्पर मिलन हुआ। म्लान अरण्य मे फूटनेवाली पहली आभामयी किरणे और नक्षत्रराज ही साक्षी थे। दूर शिला-संघर्षिणी नदी का कलकल प्रवाह हो रह था तो कही अरुणोदय की लालिमा से प्रफुल्ल-हृदय कोकिल की कुहू ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी।

क्रमश: एक पहर दिन चढ़ा। वहां शांति और जीवानंद आये। कल्याणी ने शांति से कहा- ''मै आप लोगो के हाथ बिना मूल्य के बिक चुकी हूं। मेरी कन्या का पता लगाकर मेरे उस उपकार को पूर्ण कीजिए।''

शांति ने जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा- ''मै अब सोऊं गा। आठ पहर बीते, मैं बैठा तक नही। आखिर मैं भी पुरुष हूं!''

कल्याणी जरा मुस्कुरा दी। जीवानंद ने महेन्द्र की तरफ देखकर कहा- ''यह भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिन्ह की यात्रा कीजिए- वही आपकी कन्या पहुंचा दूंगा!''

जीवानंद भैरवीपुर-निवासी बहिन के पास से लड़की लाने चले। पर कार्य सरल न था!

पहले तो निमाई बात ही खा गई। इधर-उधर ताका, फिर एक-बारगी उसका मुंह फूलकर कुप्पा हो गया! इसके बाद वह रो पड़ी, बोली-''लड़की न दूंगी।''

निमाई अपनी उल्टी हथेलियो से आंसू पोछने लगी। जीवानंद ने कहा- ''अरे बहन! तू रोती क्यों? ऐसा दूर भी तो नही है- न हो, बीच-बीच में उन लोगो के घर जाकर लड़की को देख आया करना।''

निमाई ने होठ फुलाकर कहा- ''तो तुम लोगो की लड़की है, ले क्यो नही जाते? मुझसे क्या मतलब?'' यह कहकर निमाई लड़की को उठा लाई और जीवानंद के पैर के पास पटककर वही बैठकर रोने लगी। अतः जीवानंद और कोई फुसलाने की राह न देखकर इधर-उधर की बाते करने लगे। लेकिन निमाई का क्रोध न गया। निमाई उठकर सुकुमारी के पहनने के कपड़े, उसके खेलने के खिलौने- बोझ के बोझ लाकर जीवानंद के सामने पटकने लगी। सुकुमारी स्वयं उन सबको बटोरने लगी। उसने निमाई से पूंछा- ''क्यो मां ! मै कहां जाऊंगी?'' अब निमाई सह न सकी। उसने सुकुमारी को गोद मे उठा लिया ओर चली गयी।झ्क्ष्क्ष्क्ष

पदचिन्ह के नये दुर्ग मे आज बड़े सुख से महेन्द्र, कल्याणी, जीवानंद, शांति निमाई के पति और सुकुमारी - सब एकत्र है। सब आज सुख में विभोर है-आनंदमग्न है। शांति जिस रात कल्याणी को ले आयी, उसी रात उसने कह दिया था कि वह अपने पति महेन्द्र से यह न कहे, कि नीवनानंद जीवानंद की पी है। एक दिन कल्याणी ने उसे अंतःपुर मे बुला भेजा! नवीनानंद अतःपुर मे घुस गया। उसने प्रहरियो की एक न सुनी।

शांति ने कल्याणी के पास आकर पूछा-''क्यो बुलाया है?''

कल्याणी -''पुरुष-वेश मे कितने दिनो तक रहेगी? न मुलाकात हो पाती है, न बाते होती है। मेरे पति के सामने तुम्हे प्रकट होना पड़ेगा।''

नवीनानंद बड़ी चिन्ता मे डूब गये- कुछ देर तक बोले ही नही। अन्त मे बोले-''इनमे अनेक विघ्न है, कल्याणी!''

दोनो मे इसी तरह बाते होने लगी। इधर जो प्रहरी नवीनानंद को जोर देकर अन्तःपुर मे जाने से मना कर रहे थे, उन्होने महेन्द्र से जाकर कहा कि नवीनानंद जबरदस्ती, मना करने पर भी अन्दर चले गये हैं। कौतूहलवश महेन्द्र भी अन्तःपुर मे गये। महेन्द्र ने सीधे कल्याणी के कमरे मे जाकर देखा कि नवीनानंद कमरे मे खड़े है और कल्याणी उनके शरीर के बाघम्बर की गांठ खोल रही है। महेन्द्र बड़े अचम्भे मे आए- बहुत ही नाराज हुए।

नवीनानंद ने उन्हे देख हंसकर कहा- ''क्यो, गोस्वामी जी! सन्तान पर अविश्वास?''

महेन्द्र ने पूछा- ''क्या भवानंद विश्वासी थे?''

नवीनानंद ने आंखे दिखाकर कहा-''कल्याणी क्या भवानंद के शरीर पर हाथ रखकर बाघ की खाल खोलती थी?'' यह कहते हुए शांति ने कल्याणी का हाथ दबाकर पकड़ लिया बाघम्बर खोलने न दिया।

महेन्द्र -''तो इससे क्या हुआ?''

नवीनानंद-''मुझ पर अविश्वास कर सकते है लेकिन कल्याणी पर कैसे अविश्वास कर सकते है?''

अब महेन्द्र अप्रतिभ हुए बोले- ''कहां, मै अविश्वास कब करता हूं?''

नवीनानंद -''नही तो मेरे पीछे अंतःपुर मे क्यो आ उपस्थित हुए?''

महेन्द्र - ''कल्याणी से कुछ बाते करनी थी, इसलिए आया हूं।''

नवीनानंद -''तो इस समय जाइए! कल्याणी के साथ मुझे भी कुछ बाते करनी है। आप चले जाइए, मै पहले बात करूंगा। आपका तो घर है, आप जब चाहे आकर बात कर सकते है। मैं तो बड़े कष्ट से आ पाया हूं।''

महेन्द्र बेवकूफ बन गये। वे कुछ भी समझा न पाते थे– यह सब बात तो अपराधियो जैसी नही है। कल्याणी का भाव भी विचित्र है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह भागी नही, न डरी, न लज्जित ही हुई, वरन् मृदु भाव से मुस्करा रही है। वही कल्याणी, जिसने पेड़ के नीचे सहज ही विष खा लिया– वह क्या अपराधिनी हो सकती है?.... महेद्र के मन मे यही तर्क–वितर्क हो रहा था। इसी समय शांति ने महेद्र की यह दुरवस्था देख, कुछ मुस्कराकर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्षपात किया। सहसा अंधकार मिट गया– भला ऐसा कटाक्षपात भी कभी पुरुष कर सकते है। समझ गए कि नवीनानंद कोई स्त्री है। फिर भी शक था। उन्होने साहस बटोरा और आगे बढ़कर एक झटके मे नवीनानंद की ढाढ़ी खीच ली– ढाढ़ी–मूंछ हाथ मे आ गई। इसी समय अवसर पाकर कल्याणी ने बाघम्बर की गांठ खोल दी पकड़ी जाकर शांति शरमा कर सिर नीचा कर खड़ी रह गई।

अब महेद्र ने शांति से पूछा– ''तुम कौन हो?''

शांति– '' श्रीमान नवीनानंद गोस्वामी?''

महेद्र– '' वह तो ठगी थी, तुम तो स्त्री हो!''

शांति– '' यह तो देखते ही है आप!''

महेद्र– '' तब एक बात पूछूं– तुम स्त्री होकर जीवानंद के साथ हर समय क्यो रहती थी?''

शांति– '' यह बात आप को न बताऊंगी।''

महेद्र–''तुम स्त्री हो, यह जीवानंद स्वमी जानते है?''

शांति– '' जानते है।''

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेद्र बहुत दुखी हुए।

यह देखकर अब कल्याणी चुप न रह सकी, बोली– ''ये जीवानंद स्वामी की धर्मपी शांति देवी है?''

एक क्षण के लिए महेद्र का चेहरा प्रसन्न हो उठा। इसके बाद ही उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। कल्याणी समझ गई, ''ये पूर्ण ब्रह्मचारिणी है।''

उत्तर बंगाल मुसलमानो के हाथ से निकल गया– यह बात मुसलमान मानते नही, दलील पेश करते है कि बहुतेरे डाकुओ का उपद्रव है– शासन तो हमारा ही है। इस तरह कितने वर्ष बीत जाते नही कहा जा सकता। लेकिन भगवान की इच्छा से वारेन हेटिंग्स इसी समय कलकत्ते मे गवर्नर– जनरल होकर आए। वारेन हेटिंग्स मन ही मन सतोष करने वाले आदमी न थे, अन्यथा भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित कर न पाते। उन्होने तुरंत संतानो के दमनार्थ मेजर एडवर्ड नाम के एक दूसरे सेनापति को खड़ा कर दिया। मेजर ताजा गोरी फौज लेकर तैयार हो गए।

एडवर्ड ने देखा कि यह यूरोपीय युद्ध नही है। शत्रुओ की सेना नही, नगर नही, राजधानी नही, दुर्ग नही, फिर भी सब उनके अधीन है। जिस दिन जहां ब्रिटिश सेना का पड़ाव पड़ा, उस रोज वहां ब्रिटिश अधिकार रहा, दूसरे दिन शिविर टूटते ही फिर 'वन्देमातरम' की ध्वनि गूंजने लगी। साहब सर पटककर रह गये, पर यह पता न लगा कि एक क्षण मे कहां से टिड्डियो की तरह विद्रोही सेना इकट्ठी हो जाती, ब्रिटिश अधिकृत गांवो को फूंक देती है और रक्षको की छोटी टुकड़ियो का सफाया करने के बाद फिर गायब हो जाती है? बड़ी खोज के बाद उन्हे मालूम हुआ कि पदचिन्ह मे सन्तानो ने दुर्ग –निर्माण कर रखा है उसी दुर्ग पर अधिकार करना युक्तिसंगत समझा।

वह खुफियो द्वारा यह पता लगाने लगा कि पदचिन्ह मे कितनी सन्तान–सेना रहती है। उसे जो समाचार मिला, उससे उस समय उसने दुर्ग पर आक्रमण करना उचित समझा। मन–ही–मन उसने एक अपूर्व कौशल की रचना की।

माघी पूर्णिमा सामने उपस्थित थी। उनके शिविर के निकट ही नदी तट पर बहुत बड़ा मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारी है। मेले मे सहज ही कोई एक लाख आदमी एकत्र होते है। इस बार वैष्णव राजा हुए है- शासक हुए है, अतः वैष्णवो ने इस बार मेले मे आने का संकल्प कर लिया है। पदचिन्ह के रक्षक भी अवश्य ही मेले मे पहुंचेगे, इसकी कल्पना मेजर ने कर ली। उन्होने निश्चय किया कि पदचिन्ह पर उसी समय आक्रमण कर अधिकार करना चाहिए।

यह सोचकर मेजर सने अफवाह उड़ा दी कि वे मेले पर आक्रमण करेगे, उसी दिन वहां तमाम वैष्णव सन्तान इकट्ठे रहेगे, अतः एक बार मे ही उनका समूल विध्वंस होगा- वे वैष्णवो का मेला होने न देगे।

यह खबर गांव-गांव मे प्रचारित की गयी। अतः स्वभावतः जो संतान जहां था, वह वही से अस्त्र ग्रहण कर मेले की रक्षा के लिए चल पड़ा। सभी संतानें माघी पूर्णिमा के मेले वाले नदी-तट पर आकर सम्मिलित होने लगे। मेजर साहब ने जो जाल फेका था, वह सही होने लगा। अंगरेजो के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी उस जाल मे पांव डाल दिया। महेन्द्र ने पदचिन्ह मे थोड़ी सी सेना छोड़कर शेष सारी सेना के साथ मेले के लिए प्रयाण किया।

यह सब होने के पहले ही जीवानंद और शांति पदचिन्ह से बाहर निकल गये थे। उस समय तक युद्ध की कोई बात नही थी, अतः युद्ध की तरफ उनका कोई ध्यान भी न था। माघी पूर्णिमा के दिन पवित्र जल मे प्राण-विसर्जन कर वे लोग अपना प्रायश्चित करेगे, यह पहले से निश्चित हो चुका था। राह मे जाते-जाते उन्होने सुना कि मेले मे समस्त संतानो पर अंगरेजो का आक्रमण होगा तथा भयानक युद्ध होगा। इस पर जीवानंद ने कहा- ''तब चलो, युद्ध मे ही प्राण-विसर्जन करेगे।''

वे लोग जल्दी-जल्दी चले। एक जगह रास्ता टीले के ऊपर से गया था। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पति ने देखा कि नीचे थोड़ी दूर पर अंगरेजो का शिविर पड़ा हुआ है। शांति ने कहा- ''मरने की बात इस समय ताक पर रखो, बोली - वन्देमातरम!''

इस पर दोनो ने ही चुपके-चुपके कुछ सलाह की। फिर जीवानंद पास के एक जंगल मे छिप गए। शांति एक दूसरे मे घुसकर अद्भुत काण्ड मे प्रवृत्त हुई।

शांति मरने जा रही थी, लेकिन उसने मृत्यु के समय स्त्री-वेश धारण करने का निश्चय किया था। महेद्र ने कहा था कि उसका पुरुष वेश ठगैती है, ठगी करते हुए मरना उचित नही। अतः वह साथ मे अपना पिटारा लाई थी। उसमे उसकी पोशाक रहती थी। इस समय नवीनानंद पिटारा खोलकर अपना वेश परिवर्तन करने बैठे।

चिकने बालो को पीठ पर फहराए हुए, उस पर खैर का टीका-फटीका लगाकर नवीन लता-पुष्पो से सर ढंककर शांति खासी-वैष्णवी बन गई। सारंगी उसने हाथ मे ले ली। इस तरह का वह अंगरेज-शिविर पहुंच गई। काली मूंछोवाले सिपाही उसे देखकर पागल हो उठे। चारो तरफ से लोगो ने उसे घेरकर गवाना शुरू किया। कोई ख्याल गवाता, तो कोई टप्पा, कोई गजल। किसी ने दाल दिया, किसी ने चावल, तो किसी ने मिठाई। किसी ने पैसे दिए, तो किसी ने चवन्नी ही दे दी। इसी तरह वैष्णवी अपनी आंखे से शिविर का हाल-चाल देखती घूमने लगी।

सिपाहियो ने पूछ-''अब कब आओगी?''

वैष्णवी ने कहा-''कैसे बताऊं, मेरा घर बड़ी दूर है।''

सिपाहियो ने पूछा-''कितनी दूर?''

वैष्णवी ने कहा-''मेरा घर पदचिन्ह मे है।''

एक सिपाही ने सुना था कि मेजर साहब पदचिन्ह की खबर लिया करते है, तुरंत वह वैष्णवी को मेजर साहब के शिविर मे ले गया। मेजर साहब को देखकर वैष्णवी ने मधुर कटाक्ष का बाण छोड़ा। मेजर साहब का तो सर चक्कर खा गया। वैष्णवी तुरंत खंजड़ी बजाकर गाने लगी-

''मलेच्छ निवहनितमे कलयसि करवालम्''

साहब ने पूछा-''ओ बीबी! टोमारा घड़ कहां?''

बीबी बोली-''मै बीबी नही हूं, वैष्णवी हूं। मेरा घर पदचिन्ह मे है।''

साहब -''ह्वेयर इज दैट एडसिन पेडसिन? होआं ऐ ठो घर हाय?''

बैष्णवी बोली-''घर? है।''

साहब-''घर नई-गर-गर-नई-गड़-''

शांति-''साहब! मै समझ गई, गढ़ कहते हो?''

साहब-''येस-येस, गर-गर....हाय?''

शांति-''गढ़ है-भारी किला है।''

साहब-''केहा आडमी?''

शांति-''गढ़ मे कितने लोग रहते है? करीब बीस-पचीस हजार।''

साहब-''नान्सेस- एक ठो केल्ला मे दो-चार हजर हने सकटा। अबी हुई पर हाय कि सब चला गिया?''

शांति-''वे सब मेले मे चले जाएंगे!''

साहब-''मेला मे टोम कब आया होआं से?''

शांति-''कल आए है साहब!''

साहब-''ओ लोग आज निकेल गिया होगा?''

शांति मन-ही-मन सोच रही थी कि-''तुम्हारे बाप के श्राद्ध के लिए यदि मैने भात न चढ़ाया, तो मेरी रसिकता व्यर्थ है। कितने स्यार तेरा मुंड खाएंगे, मै देखूंगी।'' प्रकट रूप मे बोली-''साहब! ऐसा हो सकता है, ऐसा हो सकता है। आज चला गया हो सकता है। इतनी खबर मै नही जानती। बैष्णवी हूं, मांगकर खाती हूं-गाना गाती हूं, तब आधा पेट भोजन पाती हूं। इतनी खबर मै क्या जानूं? बकते-बकते गला सूख गया- पैसा दो, मै जाऊं। और अच्छी तरह बख्शीश दो, तो परसो खबर दूं।''

साहब ने झन से एक रुपया फेकते हुए कहा-''परसो नही, बीबी!''

शांति बोली-''दुर बेटा, बैष्णवी कहो, बीबी क्या?''

साहब-''परसू नही, आज रात को खबर मिलने चाही।''

शांति-''बंदूक माथे के पास रखकर नाक मे कड़वा तेल छुड़वाकर सोओ। आज ही मै दस कोस रहा तय कर जाऊं और आज ही फिर लौट आऊं- और तुम्हे खबर दूं? घासलेटी कही के!''

साहब-''घासलेटी किसको बोलता?''

शांति-''जो भारी वीर, जेनरल होता है।''

साहब-''ग्रेट जेनरल हाम होने सकता। हाम-क्लाइव का माफिक। लेकिन आज ही हमको खबर मेलना चाही। सौ रूपी बख्शीश देगा।''

शांति-''सौ दो, हजार दो, बीस हजार दो-पर आज रात भर मे मै इतना नही चल सकती।''

साहब-''घोड़े पर?''

शांति-''घोड़ा चढ़ना जानती तो तुम्हारे तंबू मे आकर भीख मांगती?''

साहब–''एक दूसरा आदमी ले जाएगा।''

शांति–''गोद मे बैठाकर ले जाएगा? मुझे लज्जा नही है?''

साहब–''केया मुस्किल! पान सौ रूपी देगा।''

शांति–''कौन जाएगा–तुम खुद जाएगा?''

इस पर एडवर्ड ने पास मे खड़े एक युवक अंग्रेज को दिखाकर कहा–''लिंडले, तुम जाओ!'' लिंडले ने शांति का रूप–यौवन देखकर कहा–''बड़ी खुशी से!''

इसके बाद बड़ा जानदार अरबी घोड़ा सजकर आ गया, लिंडले भी तैयार हो गया। शांति को पकड़कर वह घोड़े पर बैठने चला। शांति ने कहा–''छि:, इतने आदमियो के सामने? क्या मुझे लज्जा नही है? आगे चलो, बाहर चलकर घोड़े पर चढ़ेगे।''

लिंडले घोड़े पर चढ़ गया। घोड़ा धीरे–धीरे चला, शांति पीछे–पीछे पैदल चली। इस तरह वे लोग छावनी के बाहर आए।

शिविर के बाहर एकांत आने पर शांति लिंडले के पैर पर पांव रखकर एक छलांग मे पीठ पर पहुंच गई। लिंडले ने हंसकर कहा–''तुम तो पक्का घुड़सवार है!''

शांति–''हम लोग ऐसे पक्के घुड़सवार है कि तुम्हारे साथ चढ़ने मे लज्जा लगती है। छी:, रकाव के सहारे तुम लोग चढ़ते हो?''

मारे शान के लिंडले ने रकाब से पैर निकाल लिया। इसी समय शांति ने पीछे से लिंडले को गला पकड़ कर छक्का दिया। वह तड़ाक से घोड़े पर से गिरा। घोड़ा भी भड़क उठा। फिर क्या था! शांति ने एक एंड़ लगाई और घोड़ा हवा से बाते करने लगा। शांति चार वर्ष तक सन्तानो के साथ रहकर पक्की घुड़सवार हो गई थी। बिना सीखे क्या जीवानंद का साथ दे सकती थी? लिंडले का पैर टूट गया और वह कराहने लगा। शांति हवा मे उड़ती जाती थी।

जिस वन मे जीवानंद छिपे हुए थे, वहां पहुंचकर शांति ने जीवानंद को सारा समाचार सुनाया। जीवानंद ने कहा–''तो मै शीघ्र जाकर महेद्र को सतर्क करूं। तुम मेले मे जाकर सत्यानंद को खबर दो। तुम घोड़े पर जाओ, ताकि प्रभु शीघ्र समाचार पा सके।''

इस तरह दोनो आदमी दो तरफ रवाना हुए। यह कहना व्यर्थ है कि शांति फिर नवीनानंद के रूप मे हो गई। एडवर्ड भी पक्का अंगरेज जेनरल था। छोटी घाटी मे उसके आदमी थे–शीघ्र ही उन्हे खबर मिली कि उस वैष्णवी ने लिंडले को घोड़े से गिराकर स्वयं रास्ता लिया। सुनते ही एडवर्ड ने हुक्म दिया–''टेट उखाड़ो–उस शैतान का पीछा करो!''

खटाखट तम्बुओ के खूंटो पर हथौड़े पड़ने लगे। मेघरचित अमरावती की तरह सवार घोड़ो पर और पदातिक पैदल चलने को तैयार हो गए। हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे, बंदूक कंधे पर लिए मच–मच चल पड़े। तापे खच्चरो द्वारा खींची जाकर घरर–घरर करती चल पड़ी।

इधर महेद्र संतान–सेना के साथ मेले की तरफ अग्रसर हुए। उसी दिन शाम को महेद्र ने सोचा अंधेरा हो चला, अब शिविर डलवा देना चाहिए।

उसी समय पड़ाव डाल देना ही उचित जान पड़ा। संतानो का शिविर कैसा? पेड़ के तनो से लगकर छाया मे सब चित–पट सो रहे। हरिचरणामृत पान कर डकार ली उन्होने। जो कुछ भूख बाकी थी, स्वप्न मे वैष्णवी के अधर–रस का पान कर उसे पूरा करने लगे। जहां पड़ाव पड़ा था, वहां बहुत सुंदर आम–कानन के पास ही एक बड़ा टीला था। महेद्र ने सोचा कि इसी टीले पर यदि पड़ाव पड़े तो कितना सुखद हो! मन मे हुआ कि टीले

को देख लेना चाहिए।

यह सोचकर महेद्र घोड़े पर चढ़कर धीरे-धीरे टीले पर चड़ने लगे। अभी तक टीले पर आधा ही चढ़े थे, कि उनकी संतान-सेना मे एक युवक वैष्णव आ पहुंचा। उसने संतानो से कहा-''चलो, टीले पर चढ़ चले।'' उसके समीप जो सैनिक खड़े थे, उन्होने पूछा-''क्यो?''

यह सुनकर वह योद्धा एक छोटी चट्टान पर खड़ा हो गया, उसने ललकारकर कहा-''आओ, वीरो! आज इसी टीले पर चढ़कर चांदनी का आनंद और मधुर वन्य पुष्पो का सौरभ-पान करते हुए शत्रुओ से बदला ले....युद्ध करे।'' संतानो ने देखा कि यह योद्धा और कोई नही, हमारे सेनापति जीवानंद है। इस पर सारी सेना-''हरे मुरारे!'' कहती हुई गगनभेदी जयोल्लास से हुंकार करती हुई, भालो पर बोझा दे उठ खड़ी हुई और जीवानंद के पीछे-पीछे टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा हुआ घोड़ा जीवानंद को लाकर दिया। दूर से महेद्र ने जो यह देखा, तो विस्मित हुए। सोचने लगे- यह क्या? बिना कहे ये सब क्यो चले आ रहे है।

यह सोचकर महेद्र ने तुरंत घोड़े का मुंह फिराया और एंड़ लगाते ही धूल बादल उड़ाते हुए नीचे आए। संतान-वाहिनी के अग्रवर्ती जीवानंद को देखकर उन्होने पूछा-''यह क्या आनंद?''

जीवानंद ने हंसकर उत्तर दिया-''आज बड़ा आनंद है। टीले के उस पार एडवर्ड पहुंच गए है। टीले पर जो पहले पहुंचेगा, उसी की जीत होगी''

इसके बाद जीवानंद ने संतान सेना से कहा-''पहचानते हो? मै जीवानंद हूं। मैने सहस्त्र-सहस्त्र शत्रुओ का वध किया है।''

तुमुल निनाद से दिगन्त कांप उठा। सैनिको ने एक स्वर से कहा-''पहचानते है, हम अपने सेनापति को पहचानते है।''

जीवानंद-''बोलो, हरे मुरारे!''

जंगल का कोना-कोना कांप उठा, प्रतिध्वनित हुआ-''हरे मुरारे''

जीवानद-''वीरो! टीले के उस पार शत्रु है। आज ही इस स्तूप के ऊपर, विमल चांदनी मे संतानो का महारण होगा। जल्दी चढ़ो- जो पहले चढ़ेगा, उसी की जीत होगी। बोलो-बन्देमातरम्''

फिर प्रतिध्वनि हुई-''वन्देमातरम्-'' धीरे-धीरे संतान-सेना पर्वत शिखर पर चढ़ने लगी। किंतु उन लोगो ने सहसा देखा कि महेद्र बड़ी ही तेजी से उतरे चले आ रहे है। उतरते हुए महेद्र ने महानिदान किया। देखते-देखते पर्वत-शिखर पर नीलाकाश मे अंगरेजो की तोपे आ लगी। उच्च स्वर में वैष्णवी सेना ने गाया-

''तुमी विद्या तुमी भक्ति

तभी मां बाहुते शक्ति

त्वं हि प्राणः शरीरे!''...

लेकिन इसी समय अंगरेजो की तोपे गर्जन कर उठी- आग उगलने लगी, उस महानिनाद मे गीत की आवाज गायब हो गई। बार-बार 'गुड्डुम-गुड्डुम' करती हुई अंग्रेजो की तोपे गर्जन पर संतान-सेना का नाश करने लगी। खेत मे जैसे फसल काटी जाती है, उसी तरह संतान-सेना कटने लगी। यह ऊपर की भयानक मार संतान-सेना न सह सकी, तुरंत भाग खड़ी हुई- जिसे जिधर राह मिली, वह उधर ही भागा। इस पर ''हुर्, हुर्'' करती हुई ब्रिटिश वाहिनी संतानो का समूल नाश करने के लिए उतरने लगी। संगीने चढ़कर, पर्वत से गिरनेवाली भयंकर शिला की तरह, शिक्षित गोरी फौज संतानो को खदेड़ती हुई तीव्र वेग से उतरने लगी। जीवानंद ने महेद्र को सामने देखकर कहा-''बस आज अंतिम दिन है। आओ यही मरे।''

महेद्र ने कहा–''मरने से यदि रण–विजय हो, तो कोई हर्ज नही, किंतु व्यर्थ प्राण गंवाने से क्या मतलब? व्यर्थ मृत्यु वीर–धर्म नही है।''

जीवानंद–''मै व्यर्थ ही मरूंगा, लेकिन युद्ध करके मरूंगा।''

कहकर जीवानंद ने पीछे पलटकर कहा–''भाईयो ! भगवान की शपथ लो कि जीवित न लौटेगे।''

जीवानंद ने घोड़े की पीठ पर से ही, बहुत पीछे खड़े महेद्र से कहा–''भाई महेद्र ! नवीनंद से मुलाकात हो तो कह देना कि परलोक मे मुलाकात होगी।''

यह कहकर वह वीरश्रेष्ठ बाएं हाथ मे बलम आगे किए हुए और दाहिने हाथ से बंदूक चलाते, मुंह से 'हरे मुरारे! हरे मुरारे!!' कहते हुए तीर की तरह उस बरसती हुई आग को चीरते हुए टीले पर बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे। इस तरह महान् साहस का परिचय देते हुए और शत्रुक्षय करते हुए जीवानंद अकेले अभिमन्यु की तरह शत्रु–व्यूह मे घुसते चले जा रहे थे, मानो एक मस्त हाथी कमल–वन को रौदता चला जाता हो।

भागती हुई संतान–सेना को दिखाकर महेद्र ने कहा–''देखो, कायरो ! भागनेवालो– अपने सेनापति का साहस देखो ! देखने से जीवानंद मर नहीं सकते।''

संतानो ने पलटकर जीवानंद का अद्‌भुत साहस प्रत्यक्ष देखा। पहले उन सबने देखा, फिर बोले–''स्वामी जीवानंद मरना जानते है, तो क्या हम नही जानते? चलो जीवानद के साथ बैकुंठ चले !''

बस, यही से रण ने पलटा खाया। संतान–सेना पलट पड़ी। पीछे भागनेवालो ने देखा कि पलट रहे है, तो उन्होने समझा कि संतानो की विजय हुई है। अत: वे भी तुरत चल पड़े।

महेद्र ने देखा कि जीवानंद शत्रुओ की सेना मे घुस गए है, अब दिखाई नही पड़ते। उन्मत्त संतान–सेना ने टीले से उतरी हुई अंग्रेज–वाहिनी पर प्रचंड आक्रमण किया– अंग्रेजो के पैर उखड़ गए। वे लोग इस आक्रमण को सह न सके, उनकी संगीने पलटकर भागने की तरफ दिखाई दी। पीछे चढ़ती हुई संतान–सेना उनका विनाश करती जा रही थी। भागी हुई संतान–सेना अभी तक बराबर पलटती हुई रण भूमि मे चढ़ती जाती थी।

महेद्र खड़े यह देख रहे थे। सहसा पर्वत–शिखर पर संतानो की पताका उड़ती दिखाई दी। वहां सत्यानंद महाप्रभु, स्वयं चक्रपाणि विष्णु की तरह बाएं हाथ में ध्वजा लिए हुए और दाहिने मे रक्त से लाल तलवार लिए खड़े थे। वह देखते ही संतानो मे अपूर्व बल आ गया–''हरे मुरारे!'' का गगन मे वह जयनाद हुआ कि वस्तुत: वसुंधरा कांपती हुई नजर आई।

इस समय अंग्रेजी सेना दोनो दलो के बीच मे थी– ऊपर प्रभु सत्यानंद ने तोपो पर अधिकार कर लिया था, नीचे से संतान–सेना पलटकर चढ़ती हुई मार रही थी।

महेद्र ने देखा कि ऊपर से ''वन्देमातरम्'' का निनाद करते हुए सत्यानंद, अवशिष्ट ब्रिटिश वाहिनी के नाश के लिए उतरे। इधर से बची हुई सेना लेकर महेद्र ने संतानो को साहस दिलाते हुए भयंकर आक्रमण कर दिया। मध्य टीले पर भयंकर युद्ध हुआ। अंग्रेज चक्की के दो पाटो मे फंसे चने की तरह पिसने लगे। थोड़ी ही देर मे एक भी ब्रिटिश सैनिक खड़ा न दिखाई दिया। धरती लाल हो गई– रक्त की नदी बह गई।

वहां ऐसा भी कोई न बचा, जो वारेन हेस्टिंग्स के पास खबर ले जाता।

पूर्णिमा की रात है। यह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ो की टाप की आवाज, बंदूको की गरज और गोलो की वर्षा गायब हो गई है। न कोई हुर्रे करता है न कोई हरे मुरारे। आवाज आती है, तो केवल कुत्तो और स्यारो की। रह–रहकर घायलो का क्रंदन सुनाई पड़ता है। किसी का पैर कटा है, किसी का हाथ कटा है, किसी का पंजर घायल हुआ है। कोई राम को पुकारता है, कोई गॉड। कोई पानी मांगता है, कोई मृत्यु का

आह्वान करता है। उस चांदनी रात मे श्याम भूमि लाल वसन पहनकर भयानक हो गई थी। किसकी हिम्मत थी कि वहां जाता?

साहस तो किसी का नही है लेकिन उस निस्तब्ध भयंकर रात मे भी एक रमणी उस अगम्य रणक्षेत्र मे विचरण कर रही है। वह एक मशाल लिए रणक्षेत्र मे किसी को खोज रही है– हरेक शव का मुंह रोशनी मे देखकर दूसरे के पास चली जाती है। कही कोई मृत देह अश्व के नीचे पड़ी है, तो वही मुश्किल से मशाल रख, दोनो हाथो से अश्व को हटाकर शव देखती और हताश हो आगे बढ़ जाती है। वह जिसे खोज रही थी, उसे न पाया। अब वह मशाल छोड़, रक्तमय जमीन पर पछाड़ खा गिरकर रोने लगी। पाठको ! यह शांति है वीर जीवानंद के शव को खोज रही है।

शांति जिस समय जमीन पर गिरकर रो रही थी, उसी समय उसे एक मधुर करुण शब्द सुनाई पड़ा–''उठो, बेटी!, रोओ नही।'' शांति ने देखा, चांदनी रात मे सामने एक जटाजूटधारी विराट महापुरुष खड़े है। शांति उठकर खड़ी हो गई! जो आए थे, उन्होने कहा–''रोओ नही, बेटी! जीवानंद शांति ने पहचाना–वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत–विक्षत, रुधिर से सने हुए थे। शांति यह कहकर वे महापुरूष शांति को रणक्षेत्र के मध्य मे ले गए। वही शवो का एक स्तूप लगा हुआ था। शांति उसे हटा न सकी थी। उस महापुरुष ने स्वयं शवो को हटाकर एक शव बाहर निकाला। शांति ने पहचाना– वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत–विक्षत रुधिर से सने हुए थे। शांति सामान्य स्त्री की तरह जोरो से रो पड़ी।''

महापुरुष ने फिर कहा–''रोओ नही बेटी! क्या जीवानंद मर गए है? शांत होकर उनका शरीर देखो, नाड़ी की परीक्षा करो!''

शांति ने शव की नाड़ी देखी, नाड़ी का पता न था। वे बोले–''छाती पर हाथ रखकर देखो।''

शांति ने छाती पर हाथ रखकर देखा, गतिहीन ठंढा था!

फिर महापुरुष ने कहा–''नाक पर हाथ रखकर देखो, कुछ भी श्वास नही है?''

शांति ने देखा, किंतु हताश हो गई।

महापुरुष ने फिर कहा–''मुंह मे उंगली डालकर देखो, कुछ गरमी मालूम पड़ती है?''

आशामुग्धा शांति ने वह भी किया, बोली–''मुझे कुछ पता नही लगता है।''

महापुरुष ने बायां हाथ शव पर रखकर कहा–''बेटी, तुम घबरा गई हो। देखो अभी देह मे हलकी गरमी है!''

अब शांति ने फिर नाड़ी देखी– देखा कि मन्द, अतिमन्द गति है। विस्मित होकर उसने छाती पर हाथ रखा– मृदुधड़कन है। नाक पर हाथ रखकर देखा– हल्की सांस है। शांति ने विस्मित होकर पूछा–''क्या प्राण था? या फिर से आ गया है?''

उन्होने कहा–''भला ऐसा कभी हुआ है, बेटी! तुम इन्हे उठाकर तालाब के किनारे तक ले चल सकोगी? मै चिकित्सक हूं, इनकी चिकित्सा करूंगा।''

शांति जीवानंद को तालाब पर ले जाकर घाव धोने लगी। इसी समय उन महापुरुष ने लता आदि का प्रलेप लाकर घावो पर लगा दिया। इसके बाद वे जीवानंद का शरीर सहलाने लगे। अब जीवानंद के श्वास–प्रश्वास तेज हो गए। कुछ ही क्षण मे उठ बैठे। शांति के मुंह की तरफ देखकर उन्होने पूछा–''युद्ध मे किसकी विजय हुई?''

शांति ने कहा–''तुम्हारी विजय! इन महात्मा को प्रणाम करो?''

अब दोनो ने देखा कि वहां कोई नही है, किसे प्रणाम करे!

समीप ही संतान–सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा था। लेकिन शांति या जीवानंद मे से कोई भी न उठा।

दोनो विमल ज्योस्तना मे पुष्करिणी–तट पर बैठे रहे। जीवानंद का शरीर अद्भुत औषध बल से जल्द ही ठीक हो गया। जीवानंद ने कहा–''शांति! चिकित्सक की दवा मे गुण है। अब मेरे शरीर मे जरा भी ग्लानि या कष्ट नही है। बोलो, अब कहां चले संतान सेना का जयोल्लास सुनाई पड़ रहा है!''

शांति बोली–''अब वहां नही। माता का कार्योद्धार हो गया है। अब यह देश संतानो का है। अब वहां क्या करने चले?''

जीवानंद–''जो राज्य छीना है उसकी बाहुबल से रक्षा तो करनी होगी।''

शांति–''रक्षा के लिए महेद्र है। तुमने प्रायश्चित कर संतान–धर्म के लिए प्राण–त्याग दिया था। अब पुन: प्राप्त इस जीवन पर संतानो का अधिकार नही है। हमलोग संतानों के लिए मर चुके है। अब हमे देखकर संतान लोग कह सकते है कि प्रायश्चित के भय से ये लोग छिप गए थे, अब विजय होने पर प्रकट हो गए है– राज्य–भाग लेने आए है।''

जीवानंद–''यह क्या शांति? लोगो के अपवाद–भय से अपना कर्त्तव्य छोड़ दे। मेरा कार्य मातृसेवा है। दूसरा चाहे जो कहे, मै मातृ–सेवा करूंगा।''

शांति–''अब तुम्हे इसका अधिकार नही है, क्यो कि तुमने मातृ–सेवा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अब–यदि सेवा करोगे, तो तुमने उत्सर्ग क्या किया? मातृ–सेवा से वंचित होना ही प्रधान प्रायश्चित है। अन्यथा जीवन त्याग देना क्या कोई बड़ा काम है?''

जीवानंद–''शांति! तुमने ठीक समझा। लेकिन मै अपने प्रायश्चित को अधूरा न रखूंगा। मेरा सुख संतान–धर्म मे है, लेकिन कहां जाऊंगा? मातृ–सेवा त्यागकर घर जाने में क्या सुख मिलेगा?''

शांति–''यह तो मै कहती नही हूं। हम लोग अब गृहस्थ नही है, हम दोनो ही संन्यासी रहेगे– फिर ब्रह्मचर्य का पालन करेगे। चलो हम लोग देश–पर्यटन कर देव–दर्शन करे।''

जीवानंद–''इसके बाद?''

शांति–''इसके बाद हिमालय पर कुटी का निर्माण कर हम दोनो ही देवाराधना करेगे– जिससे माता का मंगल हो, यही वर मांगेगे।''

इसके बाद दोनों ही उठकर हाथ मे हाथ दे, ज्योत्सनामयी रात्रि मे अन्तर्हित हो गए।

हाय मां! क्या फिर जीवानंद सदृश पुत्र और शांति जैसी कन्या तुम्हारे गर्भ मे आएंगे?

स्वामी सत्यानंद रणक्षेत्र मे किसी से कुछ न कहकर आनंदमठ मे लौट आए। वहां वे गंभीर रात्रि मे विष्णु–मंडप मे बैठकर ध्यानमग्न हुए। इसी समय उन चिकित्सक ने वहां आकर दर्शन दिया। देखकर सत्यानंद ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक बोले–''सत्यानंद! आज माघी पूर्णिमा है।''

सत्यादंन–''चलिए मै तैयार हूं। किंतु महात्मन्! मेरे एक संदेह को दूर कीजिए। मैने क्या इसीलिए युद्ध–जय कर संतान–धर्म की पताका फहरायी थी?''

जो आए थे, उन्होने कहा–''तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया, मुसलिम राज्य ध्वंस हो चुका। अब तुम्हारी यहां कोई जरूरत नही, अनर्थक प्राणहत्या की आवश्यकता नही!''

सत्यानंद–''मुसलिम राज्य ध्वंस अवश्य हुआ है, किंतु अभी हिंदु राज्य स्थापित हुआ नही है। अभी भी कलकत्ते मे अंगरेज प्रबल है।''

वे बोले–''अभी हिंदु–राज्य स्थापित न होगा। तुम्हारे रहने से अनर्थक प्राणी–हत्या होगी, अतएव चलो!''

यह सुनकर सत्यानंद तीव्र मर्म–पीड़ा से कातर हुए, बोले–''प्रभो! यदि हिंदू–राज्य स्थापित न होगा, तो कौन

राज्य होगा? क्या फिर मुसलिम-राज्य होगा?''

उन्होने कहा-''नही, अब अंगरेज-राज्य होगा।''

सत्यानंद की दोनो आंखो से जलधारा बहने लगी। उन्होने सामने जननी-जन्मभूमि की प्रतिमा की तरफ देख हाथ जोड़कर कहा-''हाय माता! तुम्हारा उद्धार न कर सका। तू फिर म्लेच्छो के हाथ मे पड़ेगी। संतानो के अपराध को क्षमा कर दो मां! रणक्षेत्र मे मेरी मृत्यु क्यो न हो गई?''

महात्मा ने कहा-''सत्यानंद कातर न हो। तुमने बुद्धि विभ्रम से दस्युवृत्ति द्वारा धन संचय कर रण मे विजय ली है। पाप का कभी पवित्र फल नही होता। अतएव तुम लोग देश-उद्धार नही कर सकोगे। और अब जो कुछ होगा, अच्छा होगा। अंगरेजो के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार नही हो सकेगा। महापुरुषो ने जिस प्रकार समझाया है, मै उसी प्रकार समझाता हूं- ध्यान देकर सुनो! तैंतिस कोटि देवताओ का पूजन सनातन-धर्म नही है। वह एक तरह का लौकिक निकृष्ट-धर्म, म्लेच्छ जिसे हिंदू-धर्म कहते है- लुप्त हो गया। प्रकृति हिंदू-धर्म ज्ञानात्मक- कार्यात्मक नही। जो अन्तर्विषक ज्ञान है- वही सनातन-धर्म का प्रधान अंग है। लेकिन बिना पहले बहिर्विषयक ज्ञान हुए, अन्तर्विषयक ज्ञान असंभव है। स्थूल देखे बिना सूक्ष्म की पहचान ही नही हो सकती। बहुत दिनो से इस देश मे बहिर्विषयक ज्ञान लुप्त हो चुका है- इसीलिए वास्तविक सनातन-धर्म का भी लोप हो गया है। सनातन-धर्म के उद्धार के लिए पहले बहिर्विषयक ज्ञान-प्रचार की आवश्यकता है। इस देश मे इस समय वह बहिर्विषयक ज्ञान नही है- सिखानेवाला भी कोई नही, अतएव बाहरी देशो से बहिर्विषयक ज्ञान भारत मे फिर लाना पड़ेगा। अंगरेज उस ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित है- लोक-शिक्षा मे बड़े पटु है। अत: अंगरेजो के ही राजा होने से, अंगरेजी की शिक्षा से स्वत: वह ज्ञान उत्पन्न होगा! जब तक उस ज्ञान से हिंदु ज्ञानवान, गुणवान और बलवान न होगे, अंगरेज राज्य रहेगा। उस राज्य मे प्रजा सुखी होगी, निष्कंटक धर्माचरण होगे। अंगरेजो से बिना युद्ध किए ही, निरस्त्र होकर मेरे साथ चलो!''

सत्यानंद ने कहा-''महात्मन्! यदि ऐसा ही था- अंगरेजो को ही राजा बनाना था, तो हम लोगो को इस कार्य मे प्रवृत्त करने की क्या आवश्यकता थी?''

महापुरुष ने कहा-''अंगरेज उस समय बनिया थे- अर्थ संग्रह मे ही उनका ध्यान था। अब संतानो के कारण ही वे राज्य-शासन हाथ मे लेगे, क्योकि बिना राजत्व किए अर्थ-संग्रह नही हो सकता। अंगरेज राजदण्ड ले, इसलिए संतानो का विद्रोह हुआ है। अब आओ, स्वयं ज्ञानलाभ कर दिव्य चक्षुओ से सब देखो, समझो!''

सत्यानंद-''हे महात्मा! मै ज्ञान लाभ की आकांक्षा नही रखता-ज्ञान की मुझे आवश्यकता नही। मैने जो व्रत लिया है, उसी का पालन करूंगा। आशीर्वाद कीजिए कि मेरी मातृभक्ति अचल हो!''

महापुरुष-''व्रत सफल हो गया- तुमने माता का मंगल-साधन किया- अंगरेज राज्य तुम्ही लोगो द्वारा स्थापित समझो! युद्ध-विग्रह का त्याग करो- कृषि में नियुक्त हो, जिसे पृथ्वी शस्यशालिनी हो, लोगो की श्रीवृद्धि हो।''

सत्यानंद की आंखो से आंसू निकलने लगे, बोले-''माता को शत्रु-रक्त से शस्यशालिनी करूं?''

महापुरुष-''शत्रु कौन है? शत्रु अब कोई नही। अंगरेज हमारे मित्र है। फिर अंगरेजो से युद्ध कर अंत मे विजयी हो- ऐसी अभी किसी की शक्ति नही?''

सत्यानंद-''न रहे, यही माता के सामने मै अपना बलिदान चढ़ा दूंगा।''

महापुरुष -''अज्ञानवश! चलो, पहले ज्ञान-लाभ करो। हिमालय-शिखर पर मातृ-मंदिर है, वही तुम्हे माता की मूर्ति प्रत्यक्ष होगी।''

यह कहकर महापुरुष ने सत्यानंद का हाथ पकड़ लिया। कैसी अपूर्व शोभा थी! उस गंभीर निस्तब्ध रात्रि मे

विराट चतुर्भुज विष्णु-प्रतिमा के सामने दोनो महापुरुष हाथ पकड़े खड़े थे। किसको किसने पकड़ा है? ज्ञान ने भक्ति का हाथ पकड़ा है, धर्म के हाथ मे कर्म का हाथ है, विजर्सन ने प्रतिष्ठा का हाथ पकड़ा है। सत्यानंद ही शांति है- महापुरुष ही कल्याण है- सत्यानंद प्रतिष्ठा है- महापुरुष विसर्जन है।

विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को साथ ले लिया।

॥ इति ॥